जन ज्ञान

मासिक

इस अंक में पढ़िए !

१. वेदोपदेश		२
२. संपादकीय		५
३. मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ		७
४. महात्मा प्रभु आश्रित —रंगीन चित्र		१६
५. स्वर्गलोक में प्रवेश कैसे मिले ?	...स्व० आत्मानन्द सरस्वती	१७
६. मैं क्या हूँ ?	...स्व० पं० चमूपति	२६
७. महाभारत कालीन आर्थिक नीतियां	...कृष्णकान्त	३२
८. आनन्द मार्ग के बारे में कुछ और	...सत्यपाल शास्त्री	३८
९. सावधान ! सावधान !!	...राधेश्याम	४२
१०. सारा जग परिवार (कविता)	...प्रकाश चन्द्र कविरत्न	४७
११. भारतीय समाजवाद क्या है ?	...चतुरसेन गुप्त	४९
१२. जन्म मृत्यु कविता	,, ,,	६०
१३. वेदों में गाय का वर्णन	—रामशरण वशिष्ठ	६१
१४. ब्रह्मविद्या और उसके भेद	...हरिश्चन्द्र वर्मा	६४
१५. बंगला देश और हम	...वैद्य गुरुदत्त जी	८१
१६. हमारी आंखें : बुझती ज्योति	...बाल कवि वैरागी	
१७. बंगला देश : हिन्दू और हमारा शासन	...ब्रह्मदत्त शर्मा	९७
१८. योग का लक्ष्य		९७
१९. विदेश प्रचार	...पं० रामखेलावन	१०२
२०. मनुष्य की चौथी चान्द यात्रा	...लज्जारानी	१०५
२१. रहस्योद्घाटन		१०९
२२. आर्य समाज और उसकी मान्यताएं	—पद्मिनी एम० ए०	११३
२३. गायत्री	...स्व० प० सातवलेकर	११७
२३. The Great Gayatri		

मुख पृष्ठ का चित्र **वीर भरत**

कभी हमारे आर्य देश में, खेला करते सिंहों से,
हम बच्चे भी शेर सदृश हो वीर धीर थे ।
हम में जीवन था, उत्साह शौर्य का,
"आर्य" तभी तो नाम हमारा कहलाता था ॥

—आभा रानी (कक्षा १०)

मुद्रक—प्रकाशक—सपादक श्रीमती राकेश रानी द्वारा
नरेन्द्र प्रैस व मनमोहन प्रैस दिल्ली में छपा ।

—संरक्षक—
चौ० प्रतापसिंह

संचालक
भारतेन्द्र नाथ

—संपादक—
—राकेश रानी—

धरती के प्रत्येक मानव के हृदय मन्दिर पर 'वेद-ज्ञान' की पावन पताका फहराने के लिए कृतसंकल्प
आर्य जनता का अपना प्रतिनिधि प्रकाशन

'जन-ज्ञान'
(मासिक)

१५९७, हरध्यान सिंह मार्ग (निकट ३१ नाई वाला) करौलबाग नई दिल्ली-५

फोन : ५६६६३९

वार्षिक मूल्य १०)
एक प्रति १)
विदेश में, एक पौण्ड
वर्ष ४ अंक ५

मार्ग-दर्शन

निराश होने से काम नहीं चलेगा, दूसरों की ओर देखते रहना भी व्यर्थ है, तुम स्वयं जो कुछ भी कर सकते हो, करो, और आगे बढ़ो !

कभी अपना रूप दूसरों को दिखाने के लिए मत बनाओ, तुम स्वयं अपने को देखो, और परखो, सोचो ! कि क्या तुम जो कुछ भी वास्तव में हो, वह दूसरों को बता सकते हो ?

आत्म प्रसिद्धि के लिए किए गए तुम्हारे किसी भी कार्य से तुम्हें तृप्ति नहीं मिलेगी। तुम्हारा नाम अखबारों में भले ही छप जाये किन्तु संतुष्टि तो तुम तब ही प्राप्त कर सकोगे, जब तुम्हारे काम मौन भाव से दूसरों के कल्याण का करण बनेंगे।

ईश्वर भक्त की पहचान केवल एक है कि वह बड़ी से बड़ी मुसीबत में भी मुस्कराता है। प्रभु का मार्ग हमें जीवन के सत्य की ओर ले जाता है, और यह सत्य हमें संसार के सबसे बड़े भय मृत्यु का स्वागत करने का साहस देता है।

दूसरों की आलोचना वे करते हैं, जिनका दामन उजला नहीं होता। सर्वदा दूसरों के गुण देखो और अपने दोष। गुण ग्रहण और दोष त्याग के मार्ग पर चल कर कोई कभी भटक नहीं सकता……

प्रभु पुत्रो ! प्रभु की बतायी राह पर चलो, इस राह पर चलकर और कुछ मिले या न मिले पर कभी दुःख नहीं मिलेगा…… आओ इस राह पर चलें—

—भारतेन्द्रनाथ

मनुष्यो ! परमेश्वर को जानो

पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान् महद् देवानामसुरत्वमेकम् ।।

ऋ० ३।५५।१४।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (विद्वान्) विद्यायुक्त मैं जो (ऋतस्य) सत्य और (देवनाम्) विद्वानों में (महत्) बड़े (एकम्) द्वितीय रहित (सद्म) स्थान और (असुरत्वम्) दोनों के दूर करने वाले का (विचरामि) प्राप्त होता हूँ उससे नियमित (पद्या) अंशों में होने वाली रात्रि सब को (वस्ते) आच्छादित करती घेरती है । अन्या (त्र्यविम्) कार्य कारण और जीव नामक तीन वस्तुओं की रक्षा करने वाले और (वपूंषि) रूपों को (रेरिहाणा) अत्यन्त चाटती हुई (ऊर्ध्वा) उत्तम (पुरुरूपा) बहुत रूप युक्त प्रातःकाल (तस्थौ) स्थित है, उस को वे और आप लोग जानें ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे दिन अनेक रूपों को दिखाता है वैसे ही रात्रि सब को घेरती है, ये ही सत्य के कारण से उत्पन्न हुए और उत्पन्न होने वाले को जान कर सबके बनाने वाले परमेश्वर को सुखपूर्वक जानो ।।

(ऋषि भाष्य से)

टिप्पणी—प्रभु ज्ञान द्वारा हमें अंधकार-अज्ञान को समझने में समर्थ करता है । और प्रभु द्वारा दिखाए गए प्रकाश से हम दुःख-सुख दिन-रात के भेद को जानकर अपने प्रयत्नों से प्रातःकाल की सुखद उषा के स्वागत को तत्पर होते हैं ।

तात्पर्य यह कि प्रभु को हम प्रभु की लीला से, प्रकृति की नियमित विराट गति प्रगति से जानें और उसकी महत्ता को हृदयंगम कर उसके स्वरूप को पहचान मनुष्य जीवन में दुःखों से छुटकारा पाकर आनन्द सुधा का पान सर्वदा करते रहें—

'जन-ज्ञान' भेंट करता है

अगले अक्टूबर अंक में

अनुपम – प्रेरक – शांतिदायक
महान् आध्यात्मिक ग्रन्थ

अमृत पथ

प्रसिद्ध पत्रकार, यशस्वी लेखक, विचारक और विद्वान पं० दीनानाथ
सिद्धान्तालंकार की लेखनी का पवित्र प्रसाद

"अमृत" अर्थात मोक्ष की ओर ले चलने का मार्ग दर्शन :
जीवन में आनन्द प्राप्ति का साधन
सरल और आकर्षक शैली में—

पृष्ठ १६० से अधिक : यह ग्रन्थ पुस्तक रूप में सजिल्द
प्रचार के लिए ३२ पौंड के बढ़िया काग़ज
पर तिरंगे आकर्षक आवरण के साथ
भेंट किया जा रहा है।

मूल्य ३) । किन्तु १५ अक्टूबर तक १२५) सैकड़ा :
७०) के ५० : ४०) के २५ : और २०) की
१० प्रतियाँ मिलेंगी। यह मूल्य सजिल्द
ग्रन्थ का है।

शीघ्र से शीघ्र आदेश भेजें

प्रतियां समाप्त होने पर इस मूल्य में फिर न मिलेंगी—

व्यवस्थापक
जन-ज्ञान-प्रकाशन, नई दिल्ली-५

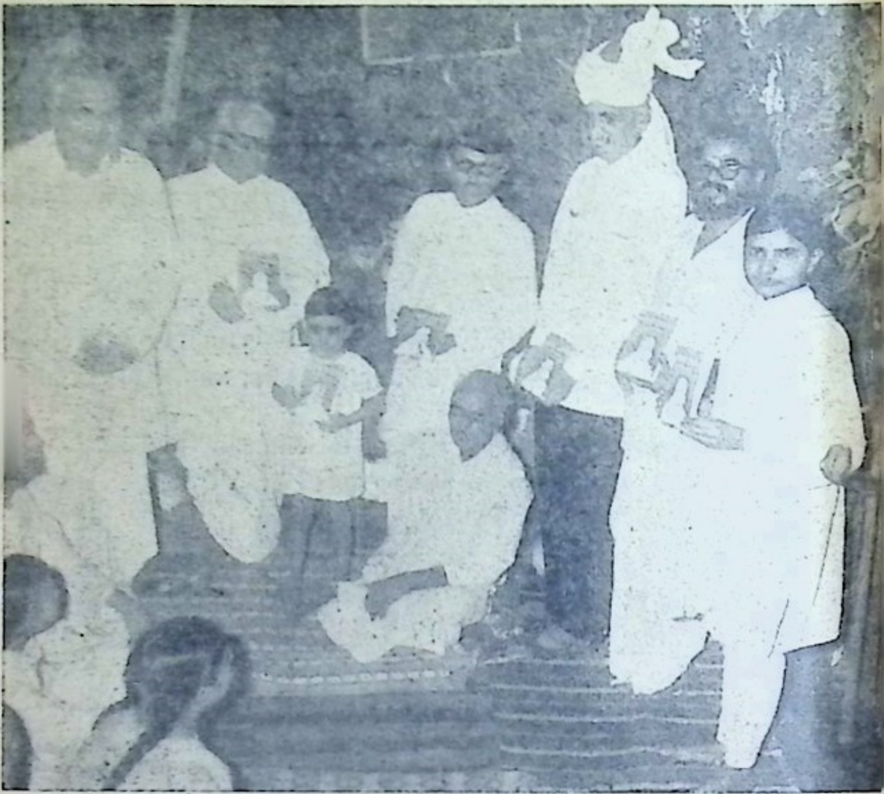

हिन्दी ऋषि जीवनी का वितरण समारोह

१६ जुलाई को यज्ञ के साथ आरंभ हुआ। इस संक्षिप्त समारोह में अपना शुभाशीर्वाद देने पधारे आचार्य श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री, ला० राम गोपाल जी, ला० चतुरसैन जी। ग्रंथ के प्रस्तुतकर्ता आचार्य जगदीश विद्यार्थी और संपादक कु० ज्योत्स्ना भी रा० सा० चौ० प्रतापसिंह जी के साथ खड़े हैं। पं० हरिशरण जी बैठे हैं और पं० भारतेन्द्र नाथ जी भी दूसरी ओर खड़े हैं। यज्ञ किया नन्हीं बालिका ऋचा ने और उसीने प्रार्थना भी करायी।

पहला संस्करण ३१ जुलाई तक समाप्त हो गया। दूसरा संस्करण प्रेस में है। किन्तु मंजिल दूर है, साधन शून्य, फिर भी प्रभु का आशीर्वाद रहा तो ५ लाख का लक्ष्य पूरा होगा—

सम्पादक

सम्पादकीय

कटा सिर जोड़ने की तैयारी करो !

२ जून १९४७, स्वर्गीय जवाहर लाल नेहरू ने लार्ड माउंटबेटन से बातें कर कमरे के बाहर आकर······प्रश्न कर्ता के प्रश्न—कि क्या हुआ ? का उत्तर दिया था कि "हमने सिर कटा कर सिर दर्द की दवा की है।"

बीते हुए चौबीस वर्षों का एक-एक पल साक्षी है कि हमने सिर भी कटाया और पैर भी, फिर भी सिर दर्द गया नहीं। भारत मां के टुकड़े करने के बाद भी मुसलमान संतुष्ट नहीं हुए, पाकिस्तान संतुष्ट नहीं हुआ, झगड़े बढ़े, समाप्त नहीं हुए।

और आज कटे हुए पैर में भी विस्फोट हुआ, कटा सिर कटे पैर को भी मिटाने पर तुल गया क्यों कि वहाँ हमसे प्यार करने वाले रहते थे।

इतिहास को भूलना ही हमारे शासकों ने सीखा है, राष्ट्र हित की दृष्टि से चिन्तन करना-शायद उन्हें कभी सिखाया नहीं गया। अन्यथा २४ वर्ष की स्वतंत्रता के बाद वीर भूमि भारत को टेढ़ी आँख से देखने का साहस संसार में किसी को भी न होता।

नयी लोरियों में जो नयी पीढ़ी जन्मी है उसने वीर नहीं, कायर, विलासी, स्वार्थीतत्वों की बाढ़ ला दी है। देश का शौर्य, स्वाभिमान, गौरव सब सो गया है देश द्रोही और देश भक्त को समान तुला पर तौलने वाला हमारा शासन तिरंगे की शान को कायम रखने में असफल रहा है। शहीदों के खून की लाली के स्वर का गीत अगर कोई सुन सके तो सुने—

वे एक ही बात कह रहे हैं—"कटा सिर और कटे पैर जोड़ दो। खंडित भारत को फिर एक करो। पाकिस्तान के फुंकारते विषधर के फन को कुचल दो।"

इस स्वर को कौन सुनेगा ? कौन मां अपने बच्चों को लोरियों में भारत माँ के अंग-भंग समाप्त करने की प्रार्थना के गीत सुनाएगी। कब गूंजेंगे इस देश में वह तराने जो अटक से कटक तक देश को एक करा सकें।

भारत की राष्ट्रीयता के स्वर पाकिस्तान की शैतानी परंपरा को मिटाने के

लिए उभरने चाहिएं। धर्म, सभ्यता की रक्षा के लिए पाकिस्तान समाप्त होना चाहिए।

और इस के लिए प्रत्येक भारतीय के मन में एक ही संकल्प अंकित होना चाहिए कि हम भारत को एक बनाएंगे।

बंगला देश का प्रश्न हो या काश्मीर का, सीमाओं की रक्षा की समस्या हो या शांति प्रसार की—सब का हल पाकिस्तान की समाप्ति से हो जाएगा। हम, हमारी सरकार और हमारे देश के नागरिक जिस दिन इस दिशा में सही चिन्तन करेंगे उस दिन हम कटा सिर जोड़ने की नींव रखेंगे।

'भारत मां की जय' के स्वर गुंजाने के लिए पाकिस्तान की नकली दीवारों को समाप्त करना ही वास्तविक हल है अन्यथा इस विशाल भूखंड में कभी शांति स्थापित न हो सकेगी।

धन्यवाद किन्तु........

श्रावणी, रक्षाबन्धन पर्व के उपलक्ष्य में हमारी प्रार्थना पर कुछ भाइयों ने ध्यान दिया, उन्होंने कार्य को देखा और बहन की पुकार का मूल्यांकन भी किया। किन्तु हजारों "जन ज्ञान" के मान्य सदस्यों में केवल कुछ सौ भाई ही ऐसे निकले ...जो भारतीय संस्कृति के आधार बिन्दु का सम्मान कर सके। सचमुच गत वर्ष जिस संकट से गुजर कर जिस भारी बोझ को उठा कर, जो परिणाम निकला है, उसका मूल्यांकन आज कोई करे या न करे, किन्तु हमें यह संतोष है कि हमने शक्ति से अधिक बोझ उठाया है।

फिर भी हम समझते हैं कि अभी हम वह साधना नहीं कर पाए कि ऋषि दयानन्द के अनुयायियों की निद्रा टूट सके। साधन न होने पर भी हम हताश नहीं होंगे, और लक्ष्य की पूर्ति के लिए बढ़ते जाएंगे। एकाकी केवल प्रभु के भरोसे, मंजिल तक बढ़ते जाने का हमारा संकल्प अधूरा नहीं रहेगा यह हमारा निश्चित विश्वास है।

५ लाख ऋषि जीवन छापने का जो निश्चय किया है उसे व्यर्थ का कार्य समझने वालों को प्रभु सद्बुद्धि दें। हम केवल यही प्रार्थना कर सकते हैं। हमारा मन हमें निरंतर अपने गुरु का जीवन प्रकाश फैलाने का आदेश दे रहा है।

प्रभु का विश्वास ही हमारी शक्ति है। वही देवाधिदेव साधन भी जुटाएंगे। भारत के प्रत्येक घर आंगन में ऋषि जीवन का प्रकाश पहुंचाने का निश्चय यदि हमारे भाई लेने को तैयार नहीं, तब भी हमारा उत्साह कम नहीं होगा, इतना विश्वास तो आपको होना ही चाहिए।

सहयोग जिन्होंने दिया, उनके प्रति हार्दिक आभारी हूं। जिन्होंने प्रार्थना स्वीकार नहीं की...संभवतः वे हमारी परीक्षा ले रहे हैं। अतः उनके प्रति भी हम कृतज्ञ हैं। आशा के आंगन में हम सभी का सदा अभिनन्दन करते हैं—

—राकेश रानी

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ ~ भारतेन्द्र नाथ

आत्म निरीक्षण

दोष अपने देखो, और गुण दूसरों के, तो जीवन में कभी भटकोगे नहीं। तुम्हारे पास गुणों का भंडार एकत्र हो जाएगा और बुराई की छाया भी कभी तुम्हारे पास नहीं फटकेगी।

जीवन में कोई कार्य ऐसा न करो, जिसे तुम्हें छिपाने की आवश्यकता अनुभव हो, जो छिपाया जाए वह 'पाप' और जो किसी को भी बताने में संकोच न हो वह 'पुण्य' है। तुम परमात्मा को सर्व व्यापक मानकर भी यह समझते हो कि तुम्हारे अपराध कोई नहीं जानता...इस से बड़ी छलना और क्या हो सकती है।

तुम विराट ब्रह्मांड की सब से छोटी इकायी हो। तुम हो एक घटक, जिससे यह विश्व समाज बना है। स्वस्थ घटक ही स्वस्थ संसार बना सकते हैं। इसलिए अपने निर्माण का सर्व प्रथम प्रयत्न करो। तुम जैसे भी हो यह संसार तुम्हारे लिए बिलकुल वैसा ही है।

अपना और अपने परिवार का सुधार समाज सुधार की पहली सीढ़ी है। जो उपदेश आज तक तुम दूसरों को देते रहे हो और आज भी देते हो, पहले यह तो देखो कि तुम स्वयं उनका पालन करते हो या नहीं।

भीतर कुछ और बाहर कुछ, मुंह में राम बगल में छुरी, यह शैतान की परंपरा है, मनुष्य की नहीं। मनुष्य तो भीतर बाहर एक होता है। छल-कपट-झूठ का रास्ता मनुष्यता को छोड़े बिना नहीं अपनाया जा सकता।

तुम अपने को बदलो, अपने मुखौटे को हृदय दर्पण में देखो और सोचो तुम कैसे हो? क्या यह रूप तुम्हें पसन्द है? यदि नहीं तो परिवर्तन का आरंभ अभी, आज ही, इसी क्षण से आरंभ कर दो। तुम समझो और जानो कि तुम क्या हो? क्या बनना चाहते हो'''और क्या करना है इस का मार्ग दर्शन तुम्हें स्वयं मिल जाएगा।

आनन्द की खोज ज्ञान का लक्ष्य है। भौतिक विज्ञान ज्ञान की सीमा नहीं लांघ पाता। वह जड़ पदार्थों में जिस आनन्द को खोजता है वह आनन्द मुझे तृप्ति नहीं दे सकता। मैं अपने को भुलाकर आनन्द का उपभोग नहीं कर सकता और अपने को जानना केवल 'ज्ञान' द्वारा ही संभव है।

प्रभु ने सृष्टि के आदि में ज्ञान दिया है। वह 'ज्ञान' वेद की ऋचाओं में आज भी हमारी अनमोल निधि है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना हमें परम धर्म बताया गया। हमने माना भी फिर भी परम धर्म हमारे जीवन का साधारण धर्म भी नहीं रह गया।

ज्ञान का अभाव हमें पशु बना रहा है। हम सब अज्ञानी हैं। ज्ञानी होने का नाटक हम भले ही कर लें पर ज्ञान हमसे कोसों दूर है। दूर-दूर से हम ज्ञान को छूते हैं पर वह हमारे जीवन की प्रेरणा नहीं बन सका। ज्ञान नहीं तो मनुष्य नहीं, यह सत्य जो जब भी समझ ले कल्याण है।

ओ प्रभु पुत्र ! प्रभु हमारे पास है, फिर भी तुम उससे दूर रहते हो, पिता से दूर रहने वाला पुत्र कुपुत्र ही कहाता है। प्रभु का प्रकाश न मिला तो यह मनुष्य जीवन व्यर्थ है। अंत समय आएगा, आँखें खुलेंगी भी तब क्या लाभ ? मेरे भाई-बहन ! आँखें खोलो, मन की आँखें, जीवन के सत्य की आँखें, देखो तो सही तुम कहाँ खड़े हो, ठीक अंधकार में, सर्वनाश के किनारे, बदलो मार्ग, आओ ! प्रभु की बतायी राह पर चलें और पा लें वह आनन्द, जिसे पाने के लिए ऋषि मुनि ज्ञानी तरसते रहे हैं।

आर्य समाज वैश्य बन गया है
हम उसे ब्राह्मण बनाना चाहते हैं

वैश्य का कार्य है धन संग्रह और ब्राह्मण का कार्य है ज्ञान प्रसार। वैश्य की अपनी उपयोगिता है और ब्राह्मण की अपनी। अपने-अपने गुण-कर्म स्वभाव से व्यक्ति वैश्य या ब्राह्मण वर्ण धारण करता है।

आर्य समाज की स्थापना 'वेद' के प्रचार और प्रसार के लिए हुयी थी, यह कार्य ब्राह्मण का है। किन्तु आज का आर्य समाज वैश्य बन गया है। सर्वत्र धन संग्रह और लाभ की प्रवृत्ति बल पा चुकी है। धन संपत्ति पर अधिकार की भूख ने गृह कलह को जन्म दिया है। और इस कलह पिशाचिनी ने आज के आर्य समाज संगठन को शैतान की छाया में ला कर खड़ा कर दिया है। विवाद और झगड़ों से जो स्थिति उत्पन्न हो चुकी है उसे देख प्रत्येक आर्य को एक चुल्लू पानी में डूबने को भी स्थान नहीं रहा।

इस पतन का एक मात्र कारण है संपत्ति। कोई लाखों-करोड़ों की संपत्ति क्यों छोड़े। मुकदमे, कोर्ट, हाई कोर्ट, सुप्रीम कोर्ट, जिन्दाबाद, शायद यही अब वेद प्रचार है। कोई गद्दी पर लात मारने को तैयार नहीं, क्योंकि कोई ब्राह्मण नहीं। झगड़ने वाले सोचते हैं कि शायद यह सब हम अपने साथ लेकर जाएंगे…

हमने समस्याओं का अध्ययन बहुत बारीकी से किया है और चिन्तन के परि-

णाम स्वरूप निष्कर्ष यही निकला कि यदि आर्य समाज को महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज के रूप में जीवित रखना है तो इसका वर्त्तमान रूप बदल इसे सच्चे ब्राह्मण के रूप में परिवर्तित किया जाए।

ब्राह्मण का धर्म है त्याग, हमारे पास जो कुछ है सब वेद-प्रचार में लगा दें, संग्रह के स्थान पर जनता पर निर्भर रहें। तब झगड़े एक मिनट में समाप्त हो जाएंगे और ऋषि का लक्ष्य भी द्रुतगति से पूरा होगा।

आर्य समाजें, प्रतिनिधि सभाएं और सर्वोच्च संगठन यदि रक्षित निधियों की प्रथा समाप्त कर सारा बल चालू कार्यों को बढ़ाने में लगाएं, आय-व्यय बराबर रखें, तो कितना कार्य हो, विश्वास बढ़े और झगड़े तब कौन करेगा, किसलिए करेगा?

ब्राह्मण प्रचार करता है और वैश्य संग्रह। हजारों रुपया बैंक में होने पर भी वेद-प्रचार के लिए धन व्यय न करने वाले आर्य समाज के मित्र नहीं शत्रु हैं। आर्य समाज के लिए हम ब्राह्मण बनें, संगठन में ब्रह्म शक्ति का उदय हो, और ज्ञान का प्रसार हमारा एक मात्र लक्ष्य बने।

देश, धर्म और मानवता पर जो संकट आया है उसका कारण है अज्ञान। आर्य समाज ज्ञान का प्रतिनिधि बन अज्ञान के विरुद्ध युद्ध करे। इस युद्ध में ब्राह्मण का रूप मुखर होगा, ज्ञान, सत्य और मनुष्य उभरेगा। प्रभु का आशीर्वाद हमें मिलेगा तो हम विजयी होंगे और जिस पवित्र लक्ष्य के लिए आर्य समाज स्थापित हुआ था वह पूर्ण होगा।

किन्तु प्रश्न यह है कि ब्राह्मण रूप का निर्माण कैसे हो? कैसे सारे आर्य नेता उपदेशक और सभाओं के अधिकारी अपनी मनोवृत्ति को बदलें? अब जबकि आर्य समाज की शताब्दी १९७५ में मनाने का आयोजन किया जा रहा है, तब सफलता के लिए क्या हम पिछले ९६ वर्ष के कार्य, पद्धति और स्थिति का सिंहावलोकन कर अपने रूप को परिवर्तित नहीं कर सकते? धरती के प्रत्येक मनुष्य के मन मंदिर पर ज्ञान पताका लहराने के लिए हमें क्या करना चाहिए? संसार के सारे मत-वादों को समाप्त करने के लिए क्या होना चाहिए...? क्या कभी सोचा है, गंभीरता से चिन्तन किया है?

ऋषि दयानन्द के प्रति श्रद्धा और आदर से नतमस्तक हो, प्रभु पर विश्वास रख आर्य समाज का प्रत्येक अंग आत्म निरीक्षण कर अपने में ब्राह्मण-भाव उत्पन्न करे। इस लक्ष्य को लेकर हम कृत संकल्प हैं। हमारा प्रयत्न उस धर्म युद्ध को तीव्र करने का है जिसके द्वारा अधर्म धरती से समाप्त हो सके।

प्रभु कृपा करें कि आर्य समाज, ऋषि दयानन्द का
आर्य समाज बन उनकी बतायी राह पर चल सके—

जन्मगत जाति और आर्य समाज

एक आर्य भाई ने पत्र लिख कर हमसे यह जानना चाहा है कि क्या जन्म

गत जाति सूचक शब्द अपने नाम के साथ लगाने वाला व्यक्ति आर्य समाज का अधिकारी या नेता या सदस्य बन सकता है ?

लिखा तो पत्र में बहुत कुछ है किन्तु जो विचारणीय है वह केवल इतना ही है। उत्तर हमसे मांगा है किन्तु अच्छा होता कि यह प्रश्न सार्वदेशिक धर्मार्थ सभा को भेजा जाता...फिर भी जब पूछा है तो प्रश्न पर विचार भी करना होगा।

सिद्धान्त की कसौटी पर हमारा उत्तर है कि नहीं, कोई भी जन्मपरक जाति व्यवस्था में विश्वास रखने वाला व्यक्ति आर्य समाज का सदस्य नहीं बनना चाहिए। जातियों के पुछल्ले लगा कर अपने को आर्य समाज का अनुयायी कहना बिल्कुल वैसा ही है जैसे शराब पीकर अपने को गांधीवादी बताना। जिस आर्य समाज की स्थापना ही मनुष्य और मनुष्य के मध्य खड़ी दीवारों को गिराने के लिए हुयी थी, उसी आर्य समाज के कर्णधार यदि अपनी उपजातियों पर अभिमान करें, शादी विवाह में भी वही जाति बिरादरी वाद जिन्दाबाद तो आर्य समाज कैसे बढ़े और कैसे गूंजे वेद वाद !

प्रश्न विवाद का नहीं निर्णय का है। क्या अपने नाम के पीछे जाति बिरादरी का पुछल्ला लगाना हम नहीं छोड़ सकते ? क्या ऋषि दयानन्द की जय वैदिक सिद्धान्तों की हत्या करने वालों द्वारा होगी ?

वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द की विजय इष्ट है तो आज ही घोषणा कर अपने नाम के साथ उप जाति चिह्न लगाना त्यागिए...।

हम सार्वदेशिक सभा से आग्रह करेंगे कि वह आवश्यक आदेश जारी कर जाति सूचक नामों का प्रयोग आर्य समाज में अविलम्ब बन्द कराए।

किसी भी व्यक्ति को अपने को आर्य समाज का सदस्य कहने का अधिकार नहीं है, जो जन्मगत जातियों में विश्वास रखता है।

आर्य समाज मंदिरां में ईसाइयत

अन्य स्थानों का तो पता नहीं, किन्तु दिल्ली के आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में जाने पर तो प्रायः ऐसा प्रतीत होता है कि हम भूल से किसी गिरजा घर में तो नहीं पहुंच गए।

अधिकांश उपस्थित व्यक्तियों को, प्रधान और मंत्रियों को टाई बांधे, पैंट पहने देखकर कभी क्रोध आता है, कभी लज्जा। भारतीयता को जिस तेजी से तलाक देकर विदेशी वारांगना को अपनाया जा रहा है उसे देखकर मन सोचता है कि धर्म के ठेकेदारों का यह हाल है तो औरों का भगवान मालिक।

समझाने पर यह मंत्री-प्रधान लज्जित होने के स्थान पर काट खाने को दौड़ते हैं। तर्क और कोरे तर्क के तीर से इन के तरकस भरे हैं। प्रभु ही इन्हें सद्बुद्धि दें तो दें, अन्यथा मर्ज लाइलाज हो चुका है।

इन पंक्तियों द्वारा मैं भारत के सभी आर्यों से आर्य समाज के अधिकारियों

से प्रार्थना करूंगा कि वे अपने सामाजिक कार्यक्रमों में, साप्ताहिक सत्संगों में विदेशी वेश भूषा का प्रयोग न करें। अपने धार्मिक समारोहों में भी पैंट का प्रयोग छोड़ें।

आर्य समाज के बड़े-बड़े नेता और कर्णधार पैंटों में जब आर्य समाज की वेदी पर इतराते हैं तो कितनी पीड़ा होती है हमारे मन में। वातावरण ऐसा बन गया है कि इस तरह की बात लिखनी भी कठिन प्रतीत होने लगी हैं।

काश कि हम 'आर्य' भारतीयता की हत्या के अपराध से मुक्त हो सकते ?

जन संघ और जमाते इस्लामी

हमारी प्रधान मंत्री और उनके कट्टर अनुयायी जब भी सांप्रदायिकता के विरुद्ध आवाज उठाते हैं वे जनसंघ और जमाते इस्लामी का नाम एक साथ लेते हैं। उनकी दृष्टि में दोनों समान रूप से भारत के शत्रु हैं।

हमारा जनसंघ से कोई संबंध नहीं है फिर भी यह बात सुन कर हमें बहुत चोट पहुंची। सचमुच यह बात कहने वाले या तो बौद्धिक दृष्टि से दिवालिया हैं या प्रथम श्रेणी के अदूरदर्शी असत्य वादी......

जनसंघ के साथ नीति का मतभेद तो समझ में आता है किन्तु उनकी देश भक्ति पर संदेह करना ऐसा ही है जैसा चांद पर कीचड़ डालना। हमारा सीधा प्रश्न है इन्दिरा जी, और उनके अनुयायियों से कि क्या भारत पर पाक आक्रमण के समय एक भी जनसंघ का सदस्य पाक का समर्थन कर सकता है और क्या जमाते इस्लामी के सदस्यों से संकट काल में भारत के समर्थन की आशा की जा सकती है ?

जनसंघ का कार्यकर्ता भारत को मां कहता है. वह मां की पूजा करता है और जमाते इस्लामी का सदस्य मां को न मां समझता है न इससे कोई लगाव रखता है वह क्या सोचता है, यह न लिखना ही उचित है।

देश द्रोही और देश भक्त को एक ही मापदंड से नाप कर देश द्रोह की भावना को प्रोत्साहन देना कितना बड़ा अपराध है, काश कि इसकी गुरुता को हमारी प्रधान मंत्री हृदयंगम कर सकतीं ?

ऋषि जीवन का दूसरा संस्करण प्रैस में दे दिया है....

ऋषि दयानन्द के सच्चे शिष्यों के उत्साह से ऋषि जीवन का प्रथम संस्करण हाथों हाथ निकल गया। १६ जुलाई को इसका वितरण आरंभ किया और २५ जुलाई तक इसकी प्रतियां समाप्त हो गयीं। ६ दिन में हजारों प्रतियां समाप्त हो जाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि दयानन्द के सैनिक अभी जीवित हैं।

हरयाणा में आर्य समाज के प्राण माननीय स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती ने एक हजार से अधिक प्रतियां प्रसारित कर हमारा जो उत्साह बढ़ाया है, उसके लिए हम सदा आभारी रहेंगे। वे दुबारा लेने आए तो प्रतियां समाप्त थीं उन्होंने ऋषि जीवन घर-घर पहुँचाने में हमें पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया। वस्तुतः ऐसे ऋषि भक्त संन्यासियों की आज आर्य समाज को आवश्यकता है। ला० दीवानचन्द जी प्रधान टंकारा ट्रस्ट, व राजपाल एण्ड संज ने एक-एक हजार प्रतियां लीं। पं० विद्याधरजी कानपुर ने ५०० प्रतियां मंगायीं—२५० व १०० प्रतियां मंगाने वालों की नामावली तो बड़ी लम्बी है। हम सभी के आभारी हैं।

किन्तु एक बात स्पष्ट और मुखरित हुई, जो बड़े-बड़े शक्ति के गढ़ हैं उन्होंने, पंजाब और दिल्ली के बड़े आर्य समाजों ने ,इस विषय में उपेक्षा करना ही उचित समझा। आर्य समाज का विशाल संगठन अभी सोया पड़ा है। जनता जाग रही है। छोटी आर्य समाजें जाग रही हैं और उन के द्वारा ही आर्य समाज जीवित है।

इस सारे प्रयत्न में उत्साह की जिस लहर को हम देखना चाहते थे वह हमें दीख नहीं रही—फिर भी हम आशावान हैं और हमें विश्वास है कि हमारे कर्णधारों की नींद टूटेगी, वे अपने गुरु देव दयानन्द के प्रति नतमस्तक होकर ऋषि जीवन के प्रचार में लगेंगे।

हमने अनेक आन्दोलन आज तक चलाए हैं किन्तु आज हम सारे आर्य जगत् को ऋषि जीवन प्रचार आन्दोलन में लगाना चाहते हैं। धुंआधार भाषण देकर ऋषि दयानन्द की जय का नारा लगाने वाले नेताओं को हम इस पवित्र कार्य में सहयोग के लिए पुकारते हैं। अपने मान्य संन्यासियों, उपदेशकों; विद्वानों, भजनोपदेशकों से हम सहयोग की प्रार्थना करते हैं। जिसे भी श्रद्धा हो ऋषि दयानन्द पर वे हमारे निवेदन पर ध्यान दें और अपना पूरा बल ऋषि दयानन्द का जीवन फैलाने में लगाएं।

हमने ५ लाख ऋषि जीवन निकालने का व्रत लिया है, किन्तु आर्य जगत् को इसे और भी अधिक बढ़ाना चाहिए। उत्साह जागना चाहिए...नींद टूटनी चाहिए और दिल्ली व पंजाब जो आर्य समाज का गढ़ था उसे इस दिशा में अपनी उपेक्षा समाप्त करनी चाहिए।

भाइयो और बहनो !

दूसरा संस्करण पहले से भी कहीं अधिक आकर्षक होगा। श्रद्धा से, आदर से, प्यार से अपने गुरु के प्रति कर्तव्य भावना से जो व्रत हमने लिया उसकी सफलता के लिए यदि ऋषि दयानन्द के अनुयायी सहयोग नहीं देंगे तो कौन देगा ?

इसे अधिक से अधिक मंगाइए: बांटिए, घर-घर पहुँचाइए और साथ ही

इसके प्रकाशन के लिए उदारता से धन भी दीजिए। १) में देने से जो भारी बोझ हम पर पड़ रहा है उसे यदि आपने बांटा नहीं तो गाड़ी कैसे चलेगी ?

सहायता भी दीजिए और बांटिए भी। प्रकाशन के लिए धन भी चाहिए और बांटने के लिए उत्साह भी···

ऋषि दयानन्द का प्रकाश देश में फैलाने के लिए, आपके द्वार पर आया हूँ ···क्या आप हमारी झोली में कुछ न डालेंगे ?

—भारतेन्द्र नाथ

मनुष्य परस्पर कैसे व्यवहार करें !

मधुमतीर्न ऽ इषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि
तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥

यजु० ७।२॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! आप (नः) हम लोगों के लिए (मधुमतीः) मधुरादिगुणसहित (इषः) अन्न आदि पदार्थों को (कृधि) कीजिए, तथा हे (सोम) शुभकर्मों में प्रेरणा करने वाले विद्वन् मैं (यत्) जिससे (ते) आपका (अदाभ्यम्) अहिंसनीय अर्थात् रक्षा करने के योग्य (जागृवि) प्रसिद्ध (नाम) नाम है 'इस कारण' (तस्मै) उस (सोमाय) ऐश्वर्य की प्राप्ति और (ते) आपके लिये अर्थात् आपकी आज्ञा वर्तने के लिए (स्वाहा) सत्यधर्मयुक्त किया (स्वाहा) सत्यवाणी और (उरु) 'बड़े' (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (अन्वेमि) प्राप्त होता हूँ।

भावार्थः—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिए अन्न जलादि पदार्थों को सम्पादन करें, वैसे ही औरों के लिए भी किया करें, और जैसे कोई मनुष्य अपनी प्रशंसा (की इच्छा) करे वैसे ही औरों के लिए भी किया करें। जैसे विद्वान् लोग अच्छे गुणवाले होते हैं, वैसे आप भी हों ॥

—ऋषि दयानन्द

धन्यवाद ! ऋषि जीवन का प्रथम संस्करण समाप्त हो गया
किन्तु मंजिल अभी बहुत दूर है—

आपने ५ लाख ऋषि जीवन भारत के घर-घर में पहुंचाना है

हम आर्य जनता के अत्यन्त आभारी हैं कि ऋषि जीवन का
प्रथम संस्करण हाथों हाथ निकल गया......

अब दूसरा संस्करण छप रहा है...

शीघ्रता कीजिए : आदेश धन सहित
कम से कम १०० प्रति
आ ही भेजिए ;

पंजाब-दिल्ली और भारत की बड़ी समाजों की नींद अभी टूटी नहीं

हमारी प्रार्थना है कि ऋषि दयानन्द की दिव्य भावना
का प्रकाश फैलाने के लिए...पूरी
शक्ति से जुट जाइए

ऋषि जीवन मंगाइए और बांटिए—

मूल्य १००) सैकड़ा ४० चित्रों सहित

जिन्हें भी श्रद्धा हो ऋषि दयानन्द पर
वे ५ लाख का संकल्प
पूरा करने में लगें

जन-ज्ञान प्रकाशन नई-दिल्ली-५ (भारत)

भारत मां को आज चाहिए ऐसे वीर सपूत !

—स्व० महात्मा प्रभु आश्रित

ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया

स्व० महात्मा प्रभुआश्रित जी का जीवन एक अथाह समुद्र था जिसमें से हर व्यक्ति अपनी इच्छानुसार मुक्ता निकाल सकता है। वे तप से परे और से सिद्धियों आगे थे। शरीर-आत्मा हृदय मस्तिष्क आचार-विचार रीति व्यवहार आदि अन्तर्बाह्य उपादानों का सम्मिलित व्यक्तित्व ही प्रभुआश्रित है। सरलता विनम्रता स्पष्टवादिता मातृभक्ति गुरुभक्ति साधना और तपस्या का लाक्षणिक समायोजन ही आपके जीवन की विशेषता है।

बालक 'टेका, को 'प्रभुआश्रित बनाने में इनकी माता और पत्नी को नहीं भुलाया सकता जो निस्वार्थ भाव से छाया की तरह इनके साथ साथ रही। मां समाईबाई को क्या पता था कि जिला मुजफ्फरगढ़ के जतोई गाँव में जन्मा बालक कभी नक्षत्र बन सकेगा।

यज्ञ और गायत्री का प्रचार इनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य था। यज्ञ में पूर्णतः लीन होकर ही इन्होंने यज्ञ का प्रचार किया। इन्होंने गायत्री को यज्ञ का प्राण माना। गायत्री के एक एक शब्द को आपने समझा, अन्तर में ग्रहण किया।

आप यज्ञ प्रचारक और सुधारक के अतिरिक्त सफल लेखक भी थे। जो दिव्यानुभूतियां इन्हें समाधि में प्राप्त हुयीं उन्हें सरल भाषा में प्रकट कर दिया। इन्होंने ज्ञान, कर्म, उपासना, ग्रहस्थ और राष्ट्र संबंधी लगभग चार दर्जन पुस्तकें लिखी। सरलता और स्पष्टता इनकी भाषा-शैली की प्रमुख विशेषतायें हैं।

जीवन के अंतिम १० वर्षों में इन्होंने योगसाधना की। आप सरल योगी थे। समाधि अवस्था में विषधर सांप भी इनके पास आकर बैठ जाते और समाधि खुलने पर वापिस चले जाते थे। रोहतक में मैंनें मोरों को इनके इर्दगिर्द नाचते देखा है।

संसार उदर की क्षुधा को ही क्षुधा समझ गली-गली यही कहता रहा— भूखे भजन न होहिं गोपाला, परन्तु इन्होंने भूखे रह कर भजन किया' प्यासे रहकर गान किया ऐसा गान जिसने सोयी जाति में प्राण फूंके।

१६ मार्च १९६७ को गौरवमंडित सरलयोगी धर्मपारायण और निष्ठावान जीवन का अंत हो गया—ऐसा जीवन जिसने अपने ऊपर कभी गर्व नहीं किया। वे ऐसे स्थितयुक्त प्रबुद्ध मानव थे जिनसे प्राणिमात्र का कल्याण हुआ, हो रहा है और होता रहेगा। —डा.राज. (एम. ए.) पी. एच. डी.

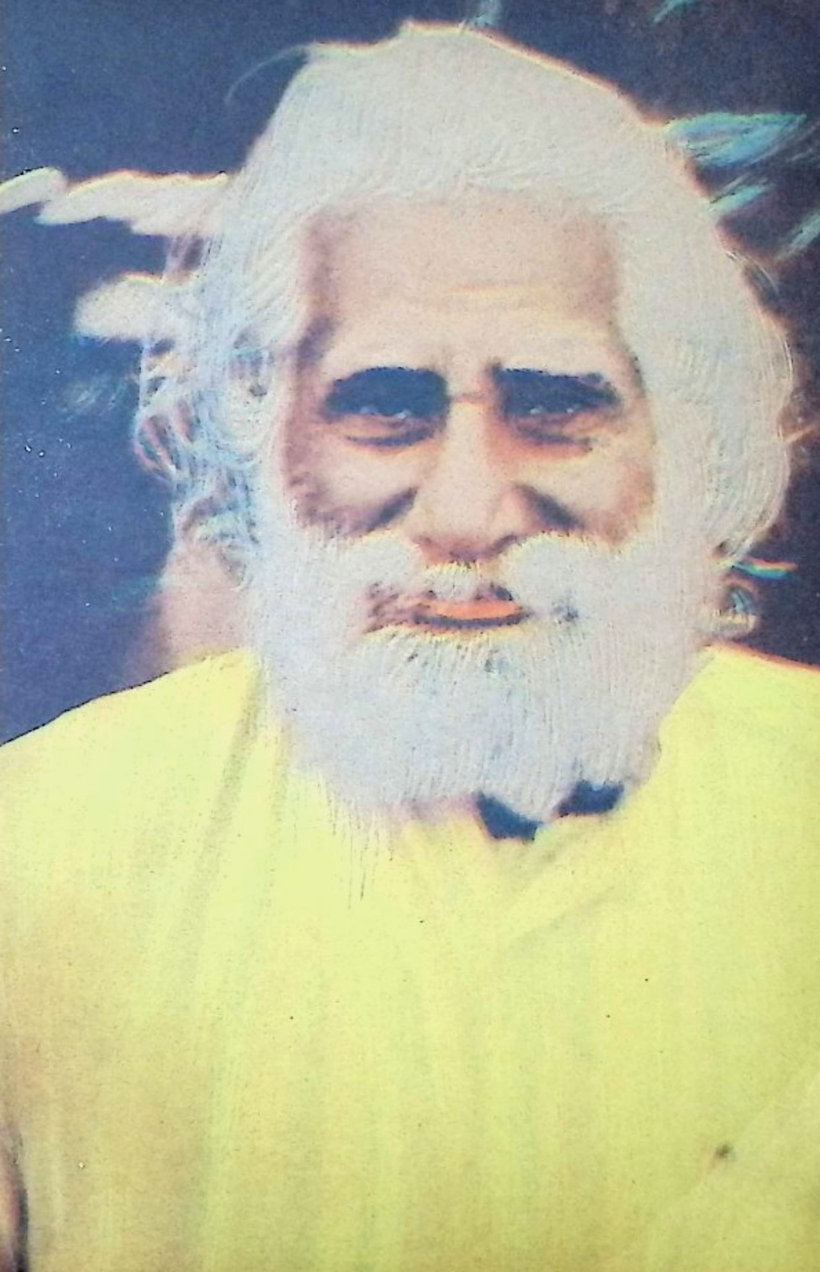

जीव
किय
त्र

—स्वामी आत्मानन्द सरस्वती

स्वर्ग लोक में प्रवेश कैसे मिले?

(छान्दोग्योपनिषद् के प्रपाठक ३ खण्ड १३ का भाव)

ब्रह्मानन्द ने किसी महात्मा से सुना था कि स्वर्ग एक ऐसा लोक है जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है। अन्धेरे का वहाँ नाम तक नहीं। चन्द्र, सूर्य तथा दूसरे प्रकाश युक्त नक्षत्रों में जितना प्रकाश दृष्टिगोचर हो रहा है यह सब उस प्रकाश स्तम्भ के छोटे-छोटे स्फुलिङ्ग मात्र हैं। वहाँ आनन्द के अमृत की गंगा वह रही है। दुनियां में धधकती हुई भट्टियों में जलता हुआ प्राणी इस आनन्द की गंगा में स्नान कर शान्ति प्राप्त कर सकता है। व्याख्यान सुनने के पश्चात् ब्रह्मानन्द ने महात्मा जी से प्रश्न कर उत्तर से यह परिचय भी पा लिया था कि वहाँ मेरे रहने के लिये भी पर्याप्त स्थान है। मैं ही नहीं अपितु इस संसार के सभी प्राणी उस लोक में समा सकते हैं और उस के अनन्तर भी सारी जगह रिक्त पड़ी रह जावेगी। इस जादूभरी बात को सुनकर ब्रह्मानन्द के अन्तःकरण में विचार उत्पन्न हुआ कि यह तमाशा अवश्य देखना चाहिये। स्वर्ग लोक एक अद्भुत लोक है। इसका विहार करने से मुझे वंचित नहीं रहना चाहिये। स्वर्ग लोक को देखने का दृढ़ निश्चय कर ब्रह्मानन्द अपने नगर से चल पड़ा। कई दिनों की दौड़ धूप के बाद द्वार के समीप पहुँचा। अभी द्वार में घुसने भी न पाया था कि एक तीक्ष्ण ध्वनि कानों में गूँज उठी, इस ध्वनि को सुन ब्रह्मानन्द स्तब्ध हो गया और उसे पहचानने के लिये ध्यान से सुनने लगा फिर वही ध्वनि आई—**सावधा ···न!**

ब्रह्मानन्द ने महात्मा जी से सुना था कि स्वर्ग लोक में सब जा सकते हैं, किसी के लिये कोई रुकावट नहीं किन्तु यहाँ भी द्वारपाल की आवाज़ सुनकर

स्तब्ध रह गया। उसे बार-बार यह विचार आने लगा कि कहीं यह किसी राजा का दरबार न हो। यदि ऐसा हुआ तो मेरे जैसे निर्बल दुखिया लोगों का गमन यहाँ कठिन है। राजाओं की सम्पत्ति और उनके मौखिक प्रतिष्ठित पद ऐश्वर्य शालियों के लिये ही निश्चित होते हैं, रिजर्व होते हैं। निर्धन-निर्बलों का रक्त चूस-चूस कर ही राजा और अमीरों के पेट मोटे हुआ करते हैं। किन्तु महात्मा जी ने तो स्वर्ग का स्थान बिना रोक-टोक के सब के रहने के लिये बतलाया था। सम्भव है यह द्वार सर्वदा बन्द ही रहता हो। यह विचार कर ब्रह्मानन्द ने पग दूसरे द्वार की ओर बढ़ाये किन्तु वहाँ भी यही ध्वनि कानों में पड़ी कि —सावधा···न ! खबरदा······र !!

इसी भाँति ब्रह्मानन्द तीसरे और चौथे द्वारों पर भी गया और यही ध्वनि कानों में पड़ती रही। पाँचवें द्वार पर जाकर वह खड़ा हो गया और मन ही मन में तुलसीदास जी की यह चौपाई पढ़ने लगा—

सकल पदार्थ हैं जग माहीं, कर्म हीन नर पावत नाँहीं ॥

अब ब्रह्मानन्द निराश हो गया और भूले हुए मृग की भाँति चारों ओर निहारने लगा। उत्तर की ओर देखा तो पूर्व की ओर मुख किये हुए मृग छाला पर आसन जमाकर बैठा हुआ एक महात्मा दिखाई दिया। ब्रह्मानन्द के मन में कुछ-कुछ धैर्य हुआ। इन महात्मा जी से यहाँ का पता ठीक मिल जायेगा। यह विचार कर वह महात्मा जी को श्रद्धा से नम्रता पूर्वक नमस्ते कर, उनके पास जा बैठा। उस दुखिया पुरुष को पास बैठा हुआ जानकर महात्मा जी की समाधि खुल गई। महात्मा जी के और ब्रह्मानन्द के जो प्रश्नोत्तर हुए वे निम्नलिखित हैं :—

महात्मा जी—तुम कौन हो और कहाँ से आये हो ?

ब्रह्मानन्द—महाराज ! मेरा नाम ब्रह्मानन्द है और मैं भाव नगर से आया हूँ। मुझे ऐसा याद आता है कि कार्तिक सुदि अष्टमी को भाव नगर में स्वर्ग लोक की महिमा पर आप ने व्याख्यान दिया था। क्या आपका शुभ नाम याज्ञवल्क्य महर्षि है ?

महात्मा जी—हाँ मुझे याज्ञवल्क्य ही कहते हैं। मैं भाव नगर में गया था और उपदेश भी दिया था।

ब्रह्मानन्द—महाराज आपने कहा था कि स्वर्ग लोक में जाने वाला कोई नहीं रोका जाता। वहाँ संसार के सभी प्राणियों के लिये बिना शुल्क खुले रूप में जाने की आज्ञा है। किन्तु वहाँ तो पाँचों द्वारों पर डण्डा लिये द्वारपाल खड़े हैं। दूर से सावधान !! की ध्वनि कानों को बहरा किये देती है। कोई भी निर्धन अन्दर नहीं घुसने दिया जाता।

महात्मा जी—ठीक है। तुमने जिनकी ध्वनि सुनी वे स्वर्ग के पाँच द्वार रक्षक हैं। वे लोगों को अन्दर जाने से रोकने के लिए उद्घोष नहीं कर रहे

अपितु उनके ये उद्घोष लोगों को सावधान करने के लिए हैं कि जो द्वारों को पार कर स्वर्ग में जाने का ढंग नहीं जानते। इन द्वार रक्षकों को अपने अनुकूल बनाकर ही मनुष्य स्वर्ग लोक में आनन्द से जा सकता है। इनका एक यह भी स्वभाव है कि ये मनुष्य को भुलाकर अपने पीछे लगा लेते हैं। इनके चकमे में आया हुआ मानव अपने ध्येय स्वर्ग को ही नहीं अपने आपको और अपनी वास्तविकता को भी भूल जाता है और इनके पीछे लगा हुआ संसार में ठोकरें खाया करता है। इसलिये इनको कोई-कोई लोग कभी-कभी असुर, राक्षस और शैतान के नाम से पुकारने लगते हैं। इन द्वार रक्षकों के नाम हैं :—

(१) आँख, (२) कान, (३) वाणी, (४) मन, और (५) प्राण। मैं इन्हें एक-एक को बुलाकर तुम्हारे सामने करता हूँ। वे अपने विषय में तुम्हें स्वयं बतलावेंगे।

अरे यहाँ विद्याधर ब्रह्मचारी है ?

विद्याधर—महाराज ! उपस्थित हूँ ! आज्ञा कीजिए !

महाराजजी—जाओ स्वर्ग लोक के प्रथम द्वरपाल आँख को बुला लाओ !

विद्याधर—महाराज बुला लाया। यह आँख उपस्थित है।

महात्मा जी—देवी आँख ! यह तो किसी को भूला नहीं है कि तुम्हारे पीछे लगकर लोग बड़ी-बड़ी ठोकरें खाते हैं। दुनिया के मन मोहक रंग रूप दिखाकर तुम मनुष्य को मोह के बड़े भारी पाश में ऐसा फंसा देती हो कि तनिक फड़क भी नहीं सकता। यद्यपि वहाँ से उसे कुछ मिलता नहीं किन्तु अपने पास की पूँजी को भी वहीं नष्ट कर स्वयं भी नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। परन्तु चाहते हुए भी इस फंदे से उसका निकलना सरल नहीं होता। यह सब कुछ ठीक है किन्तु आज हम तुम से ही इस दुखिया-दीन के लिए यह पूछना चाहते हैं कि इस पाश से छूटने का उपाय क्या है ?

आँख—महर्षि जी ! आप सब कुछ जानते हैं ! आपके सम्मुख कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। किन्तु जिस भोले मनुष्य के लिए मुझे कहने के लिये आज्ञा दे रहे हैं, आपकी आज्ञानुसार उसे अपना कुछ वृत्तान्त सुना देना कर्त्तव्य समझती हूँ। यद्यपि मेरा यह कथन मेरे अपने लिये भीष्म का-सा उदाहरण प्रस्तुत करेगा किन्तु आपकी आज्ञा का पालन भी अत्यावश्यक है। मानव किसी वस्तु के वास्तविक स्वरूप को भूलकर ही भ्रम मे पड़ता है। और उसका वह भ्रम उस वस्तु के वास्तविक स्वरूप को जानकर दूर हो जाता है। वस्तुतः मैं सारे संसार को प्रकाश और तेज प्रदान करने वाले सूर्य भगवान की सुपुत्री हूँ. जो मनुष्य सूर्य भगवान की विशेषताओं को देखकर मेरे साथ वैसा ही व्यवहार करने का यत्न करता है वह इस पाश से मुक्त हो जाता है। और उसके लिये

स्वर्ग का द्वार हर समय खुला रहता है।

ब्रह्मानन्द—हे चक्षु देवी ! वे विशेषताएँ कौन-कौन सी हैं ?

आँख—महाशय ! सबका वर्णन तो मैं नहीं कर सकती। इनमें से कुछ आपको सुना देती हूँ। सूर्य भगवान जब प्रातः ही उदय होते हैं, तो संसार के सब प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं। यह सभी के लिये एक जैसा प्रकाश देते हैं और एक ही जैसा तेज। इन्हें किसी नीच और ऊँच का, धनाड्य और दरिद्र का कोई विचार नहीं। भूमि की सभी वनस्पतियों को ये सभी के लिये उत्पन्न करते हैं। किसी एक के निमित्त नहीं। पृथ्वी पर पड़ी अशुद्ध से अशुद्ध वस्तु को ये सुखाकर शुद्ध करते हैं ठीक इसी भाँति जिस मनुष्य की आँखें संसार के सब प्राणियों को प्रेम की एक ही दृष्टि से देखती हैं, अपने द्वारा उपार्जित अन्न और धन को संसार के दीन-दुखियों में बाँटने के लिए अपने स्वामी आत्मा को दृढ़ कर देती हैं, संसार की निन्द्य वस्तुओं को देखकर भी उनसे अच्छा परिणाम निकालते हुए अपने लिये तथा दूसरों के लिये भी उन्हें लाभप्रद बनाने का प्रयत्न करती हैं, वही मनुष्य संसार के फन्दे से छूटकर स्वर्गलोक का भागी होता है।

ब्रह्मानन्द को इतना उपदेश देकर आँख ने अपना पथ पकड़ा।

महात्मा जी—विद्याधर ! जाओ बेटा स्वर्ग के दूसरे द्वार से कान को बुला लाओ।

विद्याधर—महाराज ! द्वार रक्षक कान उपस्थित है।

महात्मा जी—भाई कान तुम्हारे स्वभाव से सब मनुष्य परिचित हैं। तुम किस ढंग से प्राणियों को दुःखों में डाल देते हो यह किसी से भूला हुआ नहीं है। दुर्योधन और कर्ण की वातें तुम्हारे द्वारा सुनकर ही धृतराष्ट्र ने अपने वंश का नाश करा लिया और तड़प-तड़प कर प्राण दिये। तुम्हारे इस प्रकार के कार्य सहस्रों प्रतिदिन होते रहते हैं, जिन्हें सुनाने की यहाँ आवश्यकता नहीं। आज हम तुम से केवल यह पूछना चाहते हैं कि तुम इन दुःखों से छुड़ाकर प्राणी को किस अवस्था में स्वर्ग लोक जाने की आज्ञा दे सकते हो ?

कान—महाराज ! आप सब जानते हैं। मैं आपका दास हूँ। मैं ही नहीं सारी इन्द्रियाँ ही आपकी सेविकाएं हैं। जो मनुष्य प्रकृति के नियम को आपकी भाँति समझकर उसपर चलने का प्रयत्न करता है मैं उसका सेवक बन जाता हूँ और स्वर्ग का द्वार उसके लिये सर्वदा खुला रहता है। आप जैसे महर्षियों ने मेरी उपमा चन्द्र से दी है। चन्द्र के पास अपना प्रकाश नहीं, उसके पास जो कुछ प्रकाश है, वह सूर्य भगवान से आया हुआ है। किन्तु वह सूर्य के आलोक को लेता हुआ भी उसकी ऊष्णता को जो कि लोगों को कष्ट प्रद है छोड़ देता है और उस आलोक (प्रकाश) को शीतल

बनाकर संसार के लोगों को आनन्द प्रदान करता है। वनस्पतियों में अमृत की वर्षा करता है, जिन्हें कि खाकर संसार के प्राणी आनन्द से अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। ठीक इसी तरह मेरे पास भी बुरे या भले विचार अपने कुछ भी नहीं होते। मुझे जो कुछ विचार मिलते हैं वे अग्नि देव की सुपुत्री वाणी से मिलते हैं। जो मनुष्य मेरी दशा चन्द्र जैसी बना लेता है अर्थात् वाणी से आये हुए अभद्र विचारों को छोड़कर मेरे द्वारा भद्र विचारों को ग्रहण करता है और ऐसे ही पवित्र विचारों का दुनियाँ में प्रचार करता है उसे इन बुरे विचारों से उत्पन्न होने वाले भीषण दुःख का सामुख्य नहीं करना पड़ता और उसके लिये स्वर्ग का द्वार हर समय खुला रहता है।

महात्मा जी—विद्याधर! कान का व्याख्यान समाप्त हो गया। जाओ अब तीसरे द्वार से वाणी को बुला लाओ!

विद्याधर—महाराज! "वाणी देवी" आपकी सेवा में उपस्थित है।

महात्मा जी—देवी जी! आपकी महिमा अपार है। भीम और द्रोपदी के द्वारा कुरुक्षेत्र के स्थल पर उतर कर महाभारत का खेल आप ही ने खिलवाया। कैकई की जिह्वा में बैठकर रामचन्द्र जैसे महात्मा वीर बालक को वनवास आप ही ने दिलवाया। विभीषण के लिये कठोरता को धारण कर रावण के मुँह से निकल कर रावण का सत्यानाश आप ही ने करवाया। संसार में कौन-सा संग्राम है जिसमें कुछ न कुछ भाग आपका न हो। आप चाहें तो दुनियाँ में एक क्षण में शान्ति का राज्य स्थापित कर दें। आपकी इस तरह की लाखों कार्यवाईयाँ संसार के इतिहास में जगह-जगह लिखी हुई हैं। आज हम आपकी इस विशेषता के विषय में नहीं सुनना चाहते किन्तु यह जानना चाहते हैं कि दुनियाँ के प्राणियों को दुनियाँ के झंझटों से छुड़ाकर स्वर्ग का द्वार आप किस तरह खोल सकती हैं।

वाणी—महाराज! आप अन्तर्यामी हैं। सबके दिल की बात जानते हैं। आप जैसे योगिराजों के सम्मुख कोई अपना गुप्त से गुप्त भेद भी कैसे छुपा सकता है। आपने मेरी बुराइयों का जो चित्र खींचा है वह अक्षरशः सत्य है किन्तु इतना अवश्य कहे देती हूँ कि इसमें मेरा अपराध कुछ भी नहीं है। हमारी प्रत्येक कार्यवाही दूसरों के आधीन होती है। जैसे कोई पुरुष हाथ में तलवार लेकर उससे अपने ही गले को साफ कर ले तो कोई भी बुद्धिमान मनुष्य तलवार को अपराध का उत्तरदायी मानने को तैयार न होगा। तलवार एक साधन है और वह मनुष्य के अधिकार में है। इससे भला या बुरा जैसा काम लेना चाहे ले सकता है। ठीक इसी प्रकार संसार के लड़ाई-झगड़ों में मेरा पर्याप्त भाग होते हुए भी मैं इतनी उत्तरदायी नहीं हूँ जितना मुझ से काम लेने वाला मनुष्य। आप पूज्य और वृद्ध हैं,

आपके सामने बोलना अपमान जनक माना जायेगा। परन्तु मैं एक निवेदन किए बिना नहीं रह सकती कि मुझ अधिकंचन का भी इस पुरुष ने अपयश फैलाया है। परमात्मा ने मुझे जिस लिए बनाया है, यदि मनुष्य मुझ से वैसा ही कार्य ले तो न तो संसार में इतने युद्धों का प्रवर्तन हो और न ही मनुष्य के लिये स्वर्ग का द्वार बन्द हो। आपको विदित है कि मैं अग्नि देव की पुत्री हूँ और शास्त्रों में अग्नि का शाब्दिक अर्थ आगे ले जाने वाला है। जो लोग इस विशेषता को ध्यान में रखकर मुझे जगत् के सभ्य पुरुषों के आगे खड़ी होने योग्य बनाते हैं उनका इस लोक में भी सम्मान होता है और स्वर्ग लोक में भी। रामचन्द्र का नाम तीन युगों के पश्चात् आज भी आदर के साथ क्यों लिया जाता है? इसका एक ही कारण है कि उसकी वाणी एक थी उसने दृढ़ता पूर्वक कहा था— **'रामोर्द्विर्न भाषते'** "राम की वाणी दो नहीं हो सकती। मैंने जो कुछ कह दिया पत्थर की लकीर है।" पितामह भीष्म ने अपने पिता के सामने एक ही बार कहा था कि मैं जीवन भर विवाह नहीं करूँगा और अपने पिता के पश्चात् भी आजीवन अपने मुँह से निकली हुई इस वाणी पर अटल रहा। एक नहीं सहस्रों उदाहरण भारतवर्ष के इतिहास में आप ऐसे पायेंगे जो कि मेरे और मेरे स्वामी के नाम को प्रकाशित करने वाले होंगे। अग्नि शब्द का दूसरा अर्थ है, ज्ञानवान होना। जो मनुष्य मुझे पवित्र ज्ञान के अनुसार प्रयोग में लाता है, दुनियाँ सहस्रों मुखों से उसकी प्रशंसा करती है। ऋषियों की वाणी से निकले हुए उपनिषदों और धर्म शास्त्रों के सामने संसार के सभी भद्र पुरुष नतमस्तक हैं। इस का कारण केवल यही है कि यह धर्मग्रन्थ ऋषियों की वाणी से वेद के पवित्र ज्ञान को ध्यान में रखते हुए निकले हैं। इन महर्षियों के लिए स्वर्ग का द्वार आज तक किसी ने बन्द नहीं किया और न इस प्रकार आचरण करने वाले मनुष्य के लिए बन्द कर सकता है।

महात्मा जी—पुत्र विद्याधर! वाणी का व्याख्यान समाप्त हो गया। इन्होंने अपनी अच्छी सफाई दी है। जाओ चौथे द्वार के द्वारपाल "मन" को बुला लाओ।

विद्याधर—महाराज जाने से तो मुझे निषेध नहीं किन्तु इस देवता का नाम सुनते ही मुझे भय लगता है। सारे जगत को एक अंगुली पर रखकर नचाने वाले इस पिशाच के सम्मुख जाने से इसलिये घबराता हूँ, कि कहीं मुझे भी अपने चंगुल में न फंसा ले।

ब्रह्मानन्द—महाराज! जो कुछ विद्याधर कह रहे हैं, यदि यह ठीक है तो मुझे ऐसे देवता के मत्थे न लगाइये कहीं वह बात न हो कि गए थे चौब्बे जी बनने, दुब्बे भी न रहे। मैं आगे ही संसार के थपेड़ों से तंग हूँ, किसी

श्रौर नये झंझट में न फंसा दीजिएगा।

महात्मा जी—बेटा ब्रह्मानन्द ! घबराओ मत। संसार की सभी शक्तियां भागने वाले के पीछे दौड़ा करती हैं और जो खड़ग ले कर डट कर खड़ा हो जाता है उसके आगे सर झुका दिया करती हैं। देखो जिस मन देव से तुम इतना घबरा रहे हो वही महात्माओं की मुठ्ठी में रहा करता है। वे चाहें तो मसल कर उस का प्राण निकाल दें। बेटा विद्याधर ! जाओ ! घबराओ मत उसे शीघ्र बुला लाओ।

विद्याधर—(महात्मा जी के वचन को सुन कर विद्याधर को शान्ति हुई और मनदेव (मन) को लाकर उपस्थित कर दिया) महाराज ! मन उपस्थित है।

महात्मा जी—भाई मन देव ! संसार के सारे खेल तुम्हारी आधीनता में चल रहे हैं। तुम्हारा इतना भारी प्रभाव है कि जड़ शक्तियों पर ही नहीं, जीवात्मा जैसी चेतन शक्तियों पर भी तुम्हारा वशीकार है। तुम जैसा चाहो इन्हें नाच नचाते हो। तुम ही से तंग आ कर जीवात्मा ने यह प्रार्थना की है :—

ओ३म्-यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु ॥

अर्थ—भगवन् ! यद्यपि मेरा मन प्रकाश पुंज है किन्तु जागते हुए और सोते हुए भी यह दूर २ की दौड़ लगाता रहता है। आप की कृपा से इस के अन्दर पवित्र विचार हों जिससे कि यह आप भी शान्त हो और मुझे भी आप के पवित्र स्वरूप के दर्शन होने दे।

अर्जुन जैसे वीर पुरुष ने भी तुम ही से तंग आकर कृष्ण भगवान् से कहा था कि "भगवन् ! मन बड़ा चंचल है आप इस को रोकने के लिए उपदेश देते हैं। किन्तु मैं तो समझता हूँ कि वायु का रोका जाना सरल है और इसका रोकना कठिन है।

दस मिनट के लिए भी सन्ध्या उपासना में बैठने वाले प्राणी को तुम चैन नहीं लेने देते। तुम्हारी इस प्रकार की विशेषताओं का वर्णन करने के लिए मैंने तुम्हें नहीं बुलाया, किन्तु मेरी प्रार्थना यह है कि तुम शान्त होकर दुनिया के प्राणियों को शान्ति के पवित्र अमृतका पान करने से न रोक कर चौथा द्वार किस मूल्य पर खोल सकते हो ? उसी का वर्णन करो।

मन—महात्मा जी ! आप ने जो कुछ वर्णन किया है वह सब ठीक है। आप सब कुछ जानते हैं किन्तु मेरा निवेदन यह है कि जगत् में भले या बुरे कर्मों का उत्तरदाता एकाकी मैं ही हूँ यह बात माननीय नहीं। मेरे स्वभाव के विषय में जो कुछ आप ने वर्णन किया वह भी अक्षरशः ठीक है। किन्तु इन स्वभावों को प्रकट करने वाला मैं स्वयं नहीं हूँ, यह सब

दोष जीवात्मा का है इसने मुझे जिस मार्ग पर चलाया उसी पर चल दिया। आगे भी ऐसा होना आवश्यक है। महर्षियों ने मेरे लिए मेघ का उदाहरण दिया है। जो मनुष्य मेघ की विशेषताओं को देख कर मुझे इस साँचे में ढालना आरम्भ कर देते हैं उनके लिए स्वर्ग का द्वार बन्द करने वाली कोई शक्ति नहीं है। मेघ जबतक आकाश मण्डल में दौड़ते रहते हैं और वायु उन्हें एक स्थान पर ठहरने नहीं देता तब तक वे पानी बरसा कर संसार के मनुष्यों को प्रसन्न करना आरम्भ कर देते हैं। ठीक इसी प्रकार भगवान् पतंजलि के वचनानुसार जो लोग अपने मन को लौकिक सम्बन्धों की वायु से बचाकर इस की गतियों को रोकना आरम्भ कर देता है उनके लिए स्वर्ग का द्वार खुल जाता है।

महात्माजी—पुत्र विद्याधर! मनदेव का कथन पूरा हो चुका। ब्रह्मानन्द ने उनके उपदेशों को भी सुन लिया। अब जाओ पाँचवें द्वार से प्राण को भी बुला लाओ।

विद्याधर—महाराज! प्राणदेव को बुला लाया हूँ आपके सम्मुख उपस्थित है।

महात्माजी—प्राणदेव! यद्यपि तुम्हारा अपना कोई अपराध नहीं है। तुम्हारी सभी गति-विधियां मन के इंगित पर ही होती हैं। जब मन ठहरता है तो तुझे भी ठहरना पड़ता है। जब वह दौड़ता है तो तुम्हें भी विवश हो दौड़ना पड़ता है किन्तु फिर भी तुम स्वर्ग के एक द्वार के द्वारपाल हो और अपने द्वार से किस दशा में मनुष्य को प्रवेश दे सकते हो यह तुम से भी पूछना आवश्यक प्रतीत होता है। आशा है तुम इस प्रश्न का भली भाँति उत्तर दोगे।

प्राण:—भगवन्! आप ने जो प्रश्न किया है वह अति गहन है किन्तु मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर देने का प्रयत्न करूँगा। महर्षियों ने मेरी उत्पत्ति आकाश से बतलाई है। और यह एक मानी हुई बात है कि वस्तु की जिससे उत्पत्ति हो उस वस्तु के अन्दर उस के गुणों को स्थिर रखने से ही वह अपने स्वरूप में बनी रह सकती है और उस दिशामें वह वस्तु मनुष्य के लिए अधिक लाभदायक होती है। आकाश में एक विशेष गुण है कि वह जिस स्थान पर खड़ा हुआ है वहाँ से हिलने-जुलने का यत्न नहीं करता। मेरे अन्दर भी यदि इस तरह की विशेषता उत्पन्न कर दी जावे तो मैं अपने ही मन के दोषों को भी दूर करने में सफल हो सकता हूँ। महर्षि पतञ्जलि ने मन के रोकने के बहुत से उपाय बतलाते हुए एक यह भी बतलाया है—

"प्राणायामद्वा।"

प्राणों को रोकने से भी मन रुक जाता है। इस प्रकार जो मनुष्य नित्य प्राणायाम करते हैं, वे अपने प्राणों के द्वारा शरीर में भिन्न २ प्रकार की शक्तियाँ उत्पन्न कर सकते हैं जिससे कि इस लोक में संसार के कार्य कलाप चलाने में भी सफल होते हैं और इस अभ्यास के लम्बा और दृढ़

कृपया हमारा यह विरोध पत्र तो लेते जाइए—

(हिन्दुस्तान से साभार)

होने पर मन का विरोध करते हुए स्वर्ग के द्वार को भी अपने लिए खुला पाते हैं।

महात्माजी—भाई ब्रह्मानन्द ! तुम ने भाव नगर में जो मेरा व्याख्यान सुना था अब तुम्हें ज्ञान हो गया कि मेरे उस व्याख्यान में कोई भ्रान्ति न थी। यदि तुम प्रकाश के पुंज और उस स्वर्ग लोक में जाने की इच्छा रखते हो, तुम्हें इन पांचों द्वारपालों के उपदेश पर अवश्य आचरण करना होगा।

ब्रह्मानन्द—महाराज ! मैंने आपके भी और इन द्वारपालों के भी उपदेश को ध्यान से सुना है आपकी आज्ञा का पालन मैं हार्दिक प्राण-पण से करूँगा तथा सर्वदा आप का आभारी रहूँगा।

यह कहकर ब्रह्मानन्द ने वन का मार्ग पकड़ा और महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी समाधि में मग्न हो गए।

—स्व० पं० चमूपति

आध्यात्म

मैं क्या हूँ ?

पुराना प्रश्न है—मैं क्या हूँ ? यह प्रश्न धर्म ने किया है, तर्क ने किया है और विज्ञान ने भी किया है। उपनिषद् में आत्मा को 'प्रतिबोधविदितम्' कहा है; कोई बोध हो, उसमें बोध वाले का बोध साथ लगा रहता है। मैं देखता हूँ—इसमें देखने के साथ 'मैं' का भाव भी है। यह वृक्ष है—मैं न होऊँ तो वृक्ष के होने की साक्षी क्या ? सब साक्षियों में अपनी साक्षी का सहभाव है। प्रत्येक चेष्टा अपनी चेष्टा होती है। प्रत्येक प्रत्यय (Cognition) अपना प्रत्यय (Cognition) होता है। इसी अपना वा आप को संस्कृत में 'आत्मा' कहते हैं।

प्रयत्न ज्ञान

ऋग्वेद मं० १० सू० १६४ मं० ३७ में यह पहेली प्रस्तुत आत्मा के लिंग की है :—

न विजानामि यदि वेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ।

अर्थः—मैं नहीं जानता, क्या मैं यही हूँ (जो दीखता हूँ, अर्थात् शरीर) ? मैं तो सन्नद्ध (प्रयत्न के लिए उद्यत) होकर मनसा मनन शक्ति (न्याय दर्शन के शब्दों में ज्ञान) द्वारा चरामि गति करता हूँ।

शरीर जड़ होने से न स्वयं प्रयत्नवान् है, न ज्ञानवान्। न ही उसमें स्वतन्त्र ज्ञानपूर्वक गति (मनसा चरणम्) करने का सामर्थ्य है।

इच्छा द्वेष

इसके विपरीत आत्मा

आपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्येना सयोनिः। ऋ० १, १६४, ३८

स्वयं अमरण—धर्मा है परन्तु मरणधर्मा शरीर के साथ एक स्थानी होकर (स्वधया) अपनी इच्छा से जकड़ा हुआ किसी वस्तु की ओर जाता और किसी वस्तु से परे हटता है। अर्थात् इसमें राग और द्वेषका भाव है। लोहा भी जड़ चुम्बक की ओर खिचता है, परन्तु उस खिचने में उसकी अपनी इच्छा नहीं होती, इच्छा हो तो कभी भी न खिचे। आत्मा में राग और द्वेष की शक्ति है जिसका विकास और प्रयोग वह स्वतन्त्रता से कर सकता है, जो चुम्बक अथवा लोहा नहीं कर सकता। इससे सिद्ध हुआ कि राग और द्वेष 'आत्मा' ही के चिह्न हैं।

सुख-दुःख

इच्छा और द्वेष सुख-दुःख का फल हैं। जिस वस्तु से सुख हो उसकी इच्छा होती है, जिससे दुःख हो उससे द्वेष होता है। सुख-दुःख शरीर मात्र के ज्ञापक नहीं हो सकते। अचेतन को सुख-दुःख का भान क्या?

ऋ० १, १६४, १ में आत्मा को अश्नः अर्थात् सुख-दुःख भोक्ता कहा है।

इस प्रकार उपरिलिखित तीन मन्त्रों में आत्मा के छः लिंग बताए गए।

अन्य लिंग

सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्न ज्ञानानि आत्मनो लिंगम्। न्याय

यह लिंग वह है जिसमें सदा आत्मा का संकल्प साथ रहता है। संकल्प न हो तो सहसा न दुःख होता है न सुख। न राग न द्वेष, न प्रयत्न, न ज्ञान। मन का संयोग न होने मात्र से ही यह लिंग सिद्ध नहीं होते। इन लिंगों के अतिरिक्त कुछ लिंग ऐसे हैं जो आत्मा के होने मात्र से स्वतः—बिना मनोयोग—सिद्ध हो हैं। इनका वर्णन अथर्ववेद के निम्नलिखित मन्त्र में आया है।

यदेजति पतति यच्चतिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद्भुवत्।
तद्दाधार पृथ्वी विश्वरूपं तत्सभूय भवत्येकमेव॥

ऋ० १०, ८, ११

जो (भुवत) अपनी सत्ता मात्र से कंपन, पतन, ठहराव (गति), प्राण लेना, न लेना (प्राणापान), आंख झपकाना (निमेषोन्मेष) आदि चेष्टाएं करता है, उसने (विश्वरूपम्) सर्वेन्द्रिय प्रत्यय वाले (रूप्यते प्रतीयतइतिरूपम्) पार्थिव शरीर को धारण किया है और जिस में उन प्रत्ययों की संभूति हो कर सब ज्ञान एक हो जाता है। (इन्द्रियान्तर्विकार)

इस मन्त्र में वैशेषिक दर्शन कथित प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति, इन्द्रियान्तर्विकार—इन लिंगों का वर्णन किया है।

इन्द्रियां के प्रत्ययों का एकीकरण

यही नहीं न्याय सूत्र के 'सव्यदृष्टस्येतराभिज्ञानात्' (बांई आँख का देखा

हुआ दाँई आँख से पहिचाना जाता है।) का भी समावेश इस मन्त्र के 'संभूय' शब्द में समझना चाहिए।

इसी विषय को ऋ० १, १६४, १५ में अधिक स्पष्ट किया है यथा :—

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमाऋषयोदेवजा इति ।

७ प्रकार का एक साथ ज्ञान देनेवाली इन्द्रियों (दो कान, दो नासिकाएँ, दो नेत्र, एक मुख) को जिनमें से ६ (कान, नथुने, नेत्र) यम (जोड़े) हैं, एक ज्ञानसाधन बना कर प्रकट होने वाले को (आत्मा) कहते हैं।

जिस बात को वेद ने स्पष्ट खोलकर कहा था, उसी को दर्शनकार ने सूत्र बना कर कहा। यदि एक पदार्थ को देखें और पहली बार देखते समय एक आंख विकृत हो, और दूसरी बार देखते समय दूसरी, तो एक आँख का देखा हुआ दूसरी आँख पहचानती है। प्रतीत यह होता है कि आँखों से भिन्न किसी और व्यक्ति ने एक आँख का देखा हुआ संभाल रक्खा था, वह अब दूसरी आँख द्वारा स्मरण किया। वही और व्यक्ति 'आत्मा' है।

फिर कहा है :—

वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्यरू पे किमपि स्विदेकम ।

ऋ० १, १६४, ६॥

अर्थः—जिसने छः (यम) भौतिक इन्द्रियों को अलग-अलग करके ठहरा रखा है, उस अजन्मा आत्मा के ज्ञान में, किसी इन्द्रिय का कोई ज्ञान हो, (अन्य इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किये ज्ञान के साथ) एक हो जाता है।

इस मन्त्र में केवल विविध इन्द्रियों के प्रत्ययों का एकीकरण ही नहीं, किन्तु व्यक्तियों के बोध को क्रमबद्ध करने से जाति का ज्ञान Classification प्रत्यक्ष Perception, अनुमान Inference, उपमान Comparison, शब्दादि प्रमाणों द्वारा प्राप्त सारा ज्ञान-कलाप किसकी विभूति है, यह रहस्य खोला गया है।

यह क्रियाएँ स्वतः चलते यन्त्र की नहीं

यह सब लिंग जीते शरीर में होते हैं, मृत में नहीं। प्राण तथा निमेष को कपाटी (Valve) आदि के समान किसी भौतिक यन्त्र मात्र की क्रिया नहीं कहा जा सकता क्योंकि यान्त्रिक क्रिया का स्वयं यन्त्र निरोध नहीं कर सकता, परन्तु शरीर की इच्छा होने पर शरीर की उक्त क्रियाओं का निरोध हो सकता है। तभी तो 'प्राणत' के साथ 'अप्राणत्' कहा, 'एजति' के साथ 'तिष्ठिति' कहा। यही भाव दर्शनकार ने किया है। इन सब चिह्नों को 'आत्मा' के लिंग कहकर व्यक्त तात्पर्य यह कि इनका अस्तित्व आत्मा के बिना संभव नहीं, परन्तु आत्मा इनके बिना भी रहता है। यह लिंग हैं—धर्म नहीं।

शरीर आदि आत्मा नहीं

वेद ने उपर्युक्त मन्त्र में आत्मा के ज्ञापक चिह्नों का वर्णन किया है। यह चिह्न केवल शरीर के नहीं हो सकते। इस ओर प्रश्न द्वारा संकेत तो किया ही था, परन्तु अब स्पष्ट कहते हैं :—

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः। ऋ० १, १३४, १

इस सुन्दर वृद्ध हो जाने वाले दानादनशील शरीर का भर्ता[1] (अनादित्रयी में) मध्यम-स्थानीय भोग धर्मा (आत्मा) है।

शरीर परिणामी है

शरीर दानादनशील है, अर्थात् इसके परमाणु प्रतिक्षण क्षीण होते और उनके स्थान में नए परमाणु आते रहते हैं। इसलिए यह कभी वाम सुन्दर है और कभी पलित वृद्ध। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि इस अणु-परिवर्तन के कारण मनुष्य का शरीर प्रत्येक ७ से १२ वर्ष के अन्दर सारे का सारा नया हो जाता है। जब मेरा शरीर इस जीवन में इतनी बार सम्पूर्ण बदल जाता है तो मैं एक कैसे हूं ? वेद कहता है, भोग धर्मा शरीर नहीं, कोई और शरीरी है।

मन आत्मा नहीं

आत्मा न शरीर है और न इन्द्रिय—यह ऊपर के प्रमाणों से स्पष्ट हो गया। मन की गणना भी इन्द्रियों ही में करनी चाहिये क्योंकि वह भी एक करण है। 'तत्संभूय भवत्येकमेव' ने मन को आत्मा न होने दिया क्योंकि मन अयुगपत्—ज्ञान होने से प्रत्ययों की सम्भूति का आधार नहीं हो सकता।

आत्मा नित्य है

इस प्रकार आत्मा की पृथक् सत्ता सिद्ध हो गई। अब उसके कुछ गुणों का वर्णन किया जाएगा। आत्मा को दार्शनिकों ने सत् और चित् कहा है। अर्थात् वह नित्य और ज्ञानधर्मा है। आत्मा की नित्यता में श्रुति भगवती का कथन है :—

अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। ता शश्वन्ता॥ १.१६४. ३८.

अर्थात् अमरण-धर्मा (आत्मा) मरणधर्मा (शरीर) के साथ एक स्थानीय है, और वह दोनों (शरीर और आत्मा) नित्य हैं।

शरीर शाश्वत है पर मर्त्य। आत्मा शाश्वत भी है और अमर्त्य भी। इस विषय का अधिक विस्तार आगे करेंगे।

आत्मा अल्पज्ञ है

आत्मा का चित् होना ऊपर प्रमाणित हो चुका है। ज्ञानी है पर सर्वज्ञ नहीं। न इसका कोई विशेष ज्ञान अवश्य स्थायी है। इसी भाव को सामने रखकर वेद किसी जिज्ञासु के मुख से कहता है :—

---

१. भ्राता भरतेः। निरुक्त

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि । ऋ० १-१६४-६ ।

अर्थ :—न जानता हुआ मैं जानने वालों से पूछता हूँ। ज्ञान को आत्मा का लिंग कहने से भी यही अभिप्राय था । आत्मा में ज्ञान और अज्ञान इकट्ठे रहते हैं, अर्थात् किसी विषय का ज्ञान, किसी का अज्ञान ।

अणु

आत्मा के सम्बन्ध में अब एक बात और रही वह यह कि इसका परिणाम क्या है ? वेद स्पष्ट कहता है :—

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैवदृश्यते । अ० १०. ८. २५ ।

एक (आत्मा) बाल से भी सूक्ष्म अणु है । दूसरा (परमात्मा) मापा नहीं जा सकता अर्थात् विभु है :

विभु और मध्यम के दोष

परिणाम तीन प्रकार के माने जा सकते हैं :—विभु, मध्यम, और अणु । विभु जो सर्वत्र में हो, मध्यम जो शरीर मात्र में व्यापक हो, अणु छोटे से छोटा । कौन सा शरीर किस 'आत्मा' का है, इसका निश्चय विभु होने की अवस्था में नहीं हो सकता, क्योंकि सब विभु सब शरीरों में होंगे । ऐसी अवस्था में सब आत्माओं का शरीरों से सम्बन्ध क्यों नहीं ? सब मनों, इन्द्रियों से प्रत्येक विभु का संयोग होना चाहिए । विपक्षी कहता है, पूर्व जन्म के कर्मों के फल रूप में प्रत्येक विभु आत्मा, शरीर विशेष से सम्बन्ध होता है, दूसरे शरीरों से उसका सम्बन्ध नहीं होता । इस अदृष्ट में विशेष को कारण कहते हैं, जिसकी कल्पना अणु पक्ष में नहीं करनी पड़ती । विभु पक्ष में कल्पना-गौण है। इसलिए यह पक्ष त्याज्य है । मध्यम हो तो प्रत्येक शरीर के साथ इसका परिणाम बदलेगा अर्थात् जीव का अपना परिणाम कोई न रहेगा । जिस शरीर में जाएगा और जिस पदार्थ का परिणाम बदले वह विनाशी होता है । यह आपत्ति आयेगी । अणु होने में इन दोषों में से किसी की संभावना नहीं । अणु छोटे से छोटे शरीर में चला जायगा और अपनी शक्तियों से दीप की नाँई अपने से बड़े शरीर का द्योतन और अधिष्ठान करेगा ।

सार

जीते शरीर में कुछ ऐसी चेष्टाएँ होती हैं जो जड़ शरीर लिंग नहीं कर सकते, जैसे सुख-दुःख की अनुभूति, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान । इन्हीं को न्याय दर्शनकार ने 'आत्मा' के लिंग कहा है । वैशेषिककार ने इनके अतिरिक्त प्राणापान, निमेषोन्मेष, गति इन्द्रयान्तर्विकार (अर्थात् एक इन्द्रियपथ आँख के अनुभव से दूसरे इन्द्रिय यथा रसना में विकार होना, जैसे खट्टे पदार्थ के देखने मात्र से मुंह में पानी आना) यह भी आत्मा के लिंग कहे हैं । जब तक शरीर में आत्मा है तब तक यह लिंग रहते, आत्मा न हो तो यह भी नहीं होते । अतः यह इस शरीर से भिन्न आत्मा के चिन्ह हैं। इन्हीं लिंगों को वेद में अश्नः ऋ० १. १६४.१

१. सुख-दुःख भोक्ता अपाङ् पाङेति ऋ० १. १६४. ३८. किसी वस्तु की ओर जाता है (इच्छा), किसी से दूर (द्वेष), सन्नद्धो मनसा चरामि ऋ० १. १६४. ३७ प्रयत्नवान् होकर ज्ञान पूर्वक विचरता हूँ, प्राणत् अप्राणत् प्राण लेता है और नहीं लेता, निमिषत् आँख झपकाता है, एजति पतति तिष्ठति कांपता है, ठहरता है, विश्वरूपं संभूय भवत्येकमेव सार इन्द्रिय-जन्य बोधों का एकीकरण कर एक बोधाधार है अ० १०. ८. ११ इन शब्दों में कहा गया है। इन लिंगों के समान चेष्टाएँ भौतिक पदार्थ में भी पाई जाती हैं। Airpump का कपाटी फेफड़े की भाँति वायु को धकेलती रहती है। लोहा चुम्बक की ओर वैसे ही खिचता है जैसे आत्मा अपने प्रिय की ओर, परन्तु इन क्रियाओं में आत्मा जैसी स्वतन्त्रता, स्वेच्छा, नहीं कि जब चाहा प्राण न लिया, जिसकी ओर आज खिंचे, कल उस से दूर भी हट गए। इस प्रकार यह लिंग आत्मा की अभौतिक सत्ता को जताते हैं।

अपरिणामी

शरीर तो प्रत्येक ७वें से १२ वें वर्ष के अन्दर सम्पूर्ण बदल जाता है। तो वह स्थिर व्यक्ति कौन है जो इन बदलते शरीर में अपरिणामी रहता है? वेद ने ऋ० १. १६४. १. में शरीरों को कभी वाम सुन्दर और कभी पालित वृद्ध कहा है, क्योंकि यह होता दानादनशील है। परमाणुओं को खींचता तथा निकालता रहता है। इसका भ्राता भरणकर्ता भोग-धर्मा आत्मा है।

अमर्त्य

आत्मा के गुण हैं सत् और चित् अर्थात् नित्यता और ज्ञान। वेद ऋ० १. १६४· ३८. में शरीर और आत्मा को शश्वन्तऽनित्य कहता है परन्तु फिर वहीं अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः कह कर स्पष्ट कर दिया है कि शरीर (प्रकृतिरूप में) नित्य है पर मर्त्यमरणधर्मा है, परन्तु 'आत्मा' नित्य भी है और अमर्त्य भी।

अल्पज्ञ

आत्मा का धर्म ज्ञान है परन्तु वह ज्ञान शक्ति मात्र है। किसी विशेष विषय का ज्ञान प्रयत्न से आता है अचिकित्वाँश्चिकितुषः......पृच्छामि ऋ० १. १६४. ६. 'मैं अज्ञानी ज्ञानियों से पूछता हूँ'। यही जीव की अल्पज्ञता है।

अणु

जीव का परिणाम वेद कहता है:—बाला देकमणयिस्कं अ० १०. ८. २५. एक बाल से भी सूक्ष्म है। विभु हो तो किस शरीर का कौन आत्मा है, इसका निश्चय न होगा। एक शरीर से एक आत्मा का सम्बन्ध क्यों हो इसके लिए नियामक कारण नहीं होगा। क्योंकि सब विभु सब शरीरों में होंगे। मध्यम हो तो प्रत्येक शरीर के साथ इसका परिमाण बदलेगा और परिमाण बदलने वाला विनाशी होता है इससे अनित्यता का दोष आएगा। इस लिए 'आत्मा' का अणु होना ही युक्तियुक्त है।

—कृष्णकान्त

आज हम ऊंट और गधे को एक साथ गाड़ी में जोड़ कर अपनी अर्थ—
व्यवस्था चलाना चाहते हैं किन्तु क्या यह संभव है?

महाभारतकालीन आर्थिक नीतियां

महाभारतकालीन शासक, कार्ल मार्क्स की भांति धन को सब बुराइयों की जड़ नहीं मानते थे। वे राज्य के लिये धन को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझते थे। —लेखक

विदेशी प्रचार से भ्रमित लोगों ने एक मिथ्या धारणा बना ली है कि महाभारत काल में भारत में कोई सुचारु अर्थ व्यवस्था नहीं थी। योरोप को ही संसार की संस्कृतियों का उद्गम स्थान मानने वाले पश्चिमी विद्वान् कहते हैं—"हमने अर्थ-व्यवस्था के बारे में जो कुछ सीखा है वह यूनानियों के हमले के पश्चात् यूनानियों से ही सीखा है।" वास्तव में, यह बात बिल्कुल निराधार है। महाभारत काल की अर्थ-व्यवस्था और कर-व्यवस्था इतनी सुव्यवस्थित है, जिसे देख कर आश्चर्य होता है कि उस समय आर्थिक विषयों पर भी इतना सुन्दर विवेचन होता था। जितना सुन्दर, सर्वांगीण और व्यावहारिक आर्थिक नीतियों का विवेचन हमें महाभारत में मिलता है, उतना सुन्दर, सर्वांगीण और व्यावहारिक हमें किसी प्राचीन योरोपियन, इलियड, ओडेसी आदि महाकाव्यों में या यूनानी विद्वानों प्लेटो, अरस्तू, पोलिबियस या रोमन विद्वानों सिसरो, मैकियावैली आदि के राजनीतिक ग्रंथों में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। स्वयं योरोप ने ही भारत से बहुत कुछ सीखा है। अस्तु।

प्राचीनकाल में भारत कभी दरिद्र नहीं रहा। आज जैसी दयनीय, शोचनीय दशा उसकी कभी नहीं रही। हम धन को ही राज्य-व्यवस्था का मूल आधार मानते रहे हैं। इस सम्बन्ध में महाभारत का एक प्रसंग उल्लेखनीय है। महाभारत के युद्ध के पश्चात अधिकांश सगे-सम्बन्धियों के मारे जाने पर

महाराज युधिष्ठिर को वैराग्य हो जाता है। वे कहते हैं—"मैंने राज्य और धन-संग्रह की इच्छा रखकर पाप ही बटोरा है। मुझे ऐसे राज्य और लक्ष्मी की कोई आवश्यकता नहीं। मैं वन में चला जाऊँगा।" यह सुनकर अर्जुन उन्हें समझाते हैं—"आपके राज्य त्याग देने पर यज्ञ की इन संचित सामग्रियों को दुष्ट लोग नष्ट कर देंगे। आपको आदर्श मानकर जनता भी यज्ञ आदि कर्मों से उदासीन हो जाएँगी। तब धार्मिक कृत्यों का उन्मूलन हो जाएगा और इसका पाप आपके सिर पर लगेगा। इस जगत् में निर्धनता को धिक्कार है। सर्वस्व त्याग कर प्रजा के भविष्य की चिंता न करके निर्धन और दरिद्र बन जाना मुनियों का धर्म है, शासकों का नहीं। जिसे शासकों का धर्म कहा गया है वह धन द्वारा ही सम्पन्न होता है। जैसे हिमाच्छादित पर्वतों से बहुत-सी नदियाँ बहती रहती हैं उसी प्रकार बढ़े हुए संचित धन से सब प्रकार के शुभ कर्मों का आरम्भ होता है। धन से धर्म, धर्म से काम, और मोक्ष की सिद्धि होती है। जहाँ धन नहीं रहता वहाँ धर्म भी नहीं रहता।"

वाणिज्य को प्रोत्साहन

इस प्रकार महाभारतकालीन शासक, कार्ल मार्क्स की भाँति धन को सब बुराइयों की जड़ नहीं मानते थे। वे राज्य के लिये धन को अत्यंत महत्वपूर्ण समझते थे। शासकों को धन की प्राप्ति मुख्यतः करों द्वारा ही होती थी और कर व्यवसाय के द्वारा प्राप्त होते थे। उस समय चार व्यवसाय मुख्य समझे जाते थे—कृषि, पशुपालन, शिल्प और वाणिज्य। इस प्रकार के व्यवसाय करने वालों को तीन प्रकार से प्रोत्साहित किया जाता था—व्यवसाय के विस्तार की पूर्ण सुविधा देकर, समुचित करों द्वारा और समृद्ध व्यक्तियों का आदर-सम्मान करके। राजधर्म अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को राज्य की समृद्धि का रहस्य बताते हुए उपदेश देते हैं—"मनुष्य, लाभ के लिए ही कर्म में प्रवृत्त होते हैं। लाभ और कर्म यदि निष्प्रयोजन हुए तो कोई काम करने में प्रवृत्त नहीं होगा। अतः जिस उपाय से शासक और कार्यकर्ता दोनों को कृषि, वाणिज्य आदि कर्म से लाभ का भाग प्राप्त हो उस पर विचार करके शासक को सदैव करों का निर्धारण करना चाहिए।" कर-निर्धारण की विधि बताते हुए वे आगे चलकर कहते हैं—"शासक को माल की खरीद, बिक्री, उनके मँगाने का खर्च, उनमें काम करने वाले कर्मचारियों का वेतन, बचत और योगक्षेम के निर्वाह को ध्यान में रखकर ही व्यापारियों पर कर लगाना चाहिये।" "सोना, चांदी, तांबे, रांगे की खाने, नमक व अनाज की मण्डी नाव के घाट तथा हाथियों के यूथ इन सब स्थानों पर होने वाली आय के निरीक्षण के लिए योग्य मंत्रियों को तथा राज्य का हित चाहने वाले विश्वसनीय पुरुषों को शासक नियुक्त करे।" उस समय शिल्प कितनी उन्नति पर था, इस का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उस समय स्तर-नियं

त्रण (क्वालिटी कंट्रोल) के मापदण्ड भी निर्धारित किये गये थे। ये भीष्म पितामह स्तर नियंत्रण की ओर संकेत करते हुए कहते हैं—"हे युधिष्ठिर ! शासक को माल की तैयारी, उसकी खपत तथा शिल्प की उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणियों का समय-समय पर निरीक्षण करके शिल्प एवं शिल्पकारों पर कर लगाना चाहिये।"

राष्ट्ररूपी गाय का प्रेमपूर्वक दोहन

न्यायोचित कर-व्यवस्था की आवश्यकता बताते हुए भीष्म पितामह आगे कहते हैं—"हे भरतनन्दन युधिष्ठिर। जिस गाय का दूध इस प्रकार दुहा जाता है कि बछडे के लिए भी पर्याप्त दूध बच जाता है। उसका बछड़ा दूध पीकर पुष्ट एवं बलवान् होकर दीर्घकाल तक भारी भार वहन करने में समर्थ होता है, परन्तु जिस गाय का दूध इस प्रकार से दुह लिया जाता है जिससे बछड़े के लिए दूध शेष नहीं रहता, उसका बछड़ा कमजोर होने के कारण आवश्यकता पड़ने पर भार-वहन करने में समर्थ नहीं हो पाता। उसी प्रकार राष्ट्र का भी

> **"मनुष्य, लाभ के लिए ही कर्म में प्रवृत्त होते हैं। लाभ और कर्म यदि निष्प्रयोजन हुए तो कोई काम करने में प्रवृत्त नहीं होगा। अतः जिस उपाय से शासक और कार्यकर्त्ता दोनों को कृषि, वाणिज्य आदि कर्म से लाभ का भाग प्राप्त हो उस पर विचार करके शासक को सदैव करों का निर्धारण करना चाहिये।"**
>
> **—महाभारत**

अधिक कर द्वारा दोहन करने से वह दरिद्र हो जाता है और इस कारण कोई महान् कार्य नहीं कर पाता।...जैसे भौंरा धीरे-धीरे फूलों का रस लेता है, फूलों की पंखुड़ियों और पराग को नष्ट नहीं करता। जैसे मनुष्य गाय का कष्ट न देकर उसे धीरे-धीरे प्रेम से दुहता है, उसके थनों को कुचल नहीं डालता, उसी प्रकार कोमलता के साथ ही शासक को राष्ट्ररूपी गौ का दोहन करना चाहिये।" शासक को किस प्रकार के विधान से धन-संग्रह करना चाहिये, इसकी चर्चा करते हुए भीष्म पितामह कहते हैं—"प्रजा की आय का छठा भाग करके रूप में ग्रहण करके, उचित शुल्क या टैक्स लेकर, अपराधियों को आर्थिक दण्ड देकर, शास्त्र के अनुसार व्यापारियों की रक्षा आदि करने के कारण उनसे विशेष शुल्क लेकर इन्हीं उपायों और मार्गों से शासक को धन की इच्छा करनी चाहिये।"

व्यापारियों का रक्षण, पोषण और प्रोत्साहन

महाराज युधिष्ठिर द्वारा व्यापारियों के रक्षण, पोषण और प्रोत्साहन के उपाय पूछने पर भीष्म उत्तर देते हैं—"हे कुन्तीनन्दन। यदि शासक व्यापारियों के हानि-लाभ की परवाह न करके उन्हें कर-भार से विशेष कष्ट पहुँचाता है तो वे राज्य छोड़कर भाग जाते हैं और शासक उनसे होने वाले लाभ स वंचित हो जाता है। शासक को चाहिये, वह व्यापारियों को सान्त्वना दे, उनकी रक्षा करे, उन्हें धन की सहायता करे, उनकी स्थिति को सुदृढ़ रखने का बार-बार प्रयत्न करे, उन्हें आवश्यक वस्तुएँ अर्पित करे और सदा उनके प्रिय कार्य करता रहे।" "हे भारत! व्यापारियों को उनके परिश्रम का फल सदा देते रहना चाहिये; क्योंकि समृद्ध व्यापारियों के कारण ही राष्ट्र समृद्ध कहलाता है। अतः बुद्धिमान् शासक सदा व्यापारियों पर यत्नपूर्वक प्रेम बनाये रखे। उनके साथ दयालुता का व्यवहार करे और उन पर हलके कर लगाये।" "हे युधिष्ठिर! शासक को व्यापारियों की सुरक्षा का प्रबंध करना चाहिये, जिससे वे देश में सब ओर कुशलतापूर्वक विचरण कर सकें। शासक के लिए इससे बढ़कर हितकर काम दूसरा नहीं।" "हे भरतनन्दन! धनी लोग राष्ट्र के मुख्य अंग होते हैं। शासक का कोष धनवान् ही अपने करों द्वारा भरते हैं। धनवान् पुरुष समस्त प्राणियों में प्रधान होता है, इसमें संशय नहीं।"

लुटेरों, भ्रष्टों और भिखमंगों को प्रोत्साहन नहीं

लुटेरों, भिखमंगों, जुआरियों और भ्रष्ट कर्मचारियों से सावधान करते हुए भीष्म पितामह आगे कहते हैं—"हे युधिष्ठिर! तुम्हारे राज्य में भिखमंगे, जुआरी, चोर और लुटेरे न हों, क्योंकि ये प्रजा के धन को छीनने वाले होते हैं, उनका ऐश्वर्य बढ़ाने वाले नहीं।" बहुत पहले, मनु महाराज ने समस्त प्राणियों के लिये यह नियम बना दिया है कि अत्यंत आपत्तिकाल को छोड़कर अन्य समय में कोई किसी से कुछ नहीं माँगे। यदि ऐसी व्यवस्था न होती तो सब लोग कर्म करने की अपेक्षा भीख माँग कर गुजारा करते। फिर कोई कर्म नहीं करता और फिर कोई भीख देने वाला भी शेष नहीं रहता। ऐसी दशा में सम्पूर्ण जगत् के लोग निःसंदेह नष्ट हो जाते। इसलिये भीख को कभी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। भीष्म पितामह आगे चलकर कहते हैं—"हे राजन् जो राजकर्मचारी उचित से अधिक कर वसूल करते हों, वे तुम्हारे हाथ से दण्ड पाने योग्य हैं। तुम्हारे राज्य में राज्य की उन्नति करने वाले रहें, द्रोह करने वाले न रहें। तुम लालची, भ्रष्ट और मूर्ख मनुष्यों को धन-प्राप्ति के साधनों में मत लगाओ। जो लोभरहित और बुद्धिमान् हों, उन्हों को कर वसूल करने के कार्यों पर नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि मूर्ख, लोभी और भ्रष्ट मनुष्य को यदि धन-संग्रह का अधिकारी बना दिया जाता है तो वह अनुचित और अन्याय-पूर्ण उपायों से प्रजा को कष्ट पहुँचाता है, जिससे प्रजा की व्यापार आदि कार्यों

में रुचि नहीं रह जाती और राष्ट्र उससे प्राप्त होने वाले कर से वंचित रहता है।" "जो रक्षा करने योग्य पुरुषों की रक्षा करता है वही शासक समस्त शासकों में शिरोमणि होता है। जो रक्षा के पात्र मनुष्य विद्वान्, धनवान्, शूरवीर, धर्मनिष्ठ, स्वामी, सत्यवादी आदि की रक्षा नहीं करते, उन नाममात्र के शासकों की जगत् को कोई आवश्यकता नहीं।" शासक की नियुक्ति प्रजा के प्राण और धन-सम्पत्ति की रक्षा के लिये होती है। जो शासक पापियों को, जनता के प्राण-हरण करने वालों को, उन्हें लूटने वालों को दण्ड देकर नियंत्रण में नहीं रखता, वह स्वयं पापाचारी माना जाता है, उसे राजलक्ष्मी त्याग देती है।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि उस समय के शासक केवल शूरवीर ही नहीं होते थे, बल्कि अर्थशास्त्र के भी ज्ञाता होते थे। वे इस बात को भली-भाँति जानते थे कि राज्यकोष शासन का आधार है, कोष की वृद्धि कर द्वारा होती है, कर व्यापारियों द्वारा प्राप्त होता है, व्यापारियों को प्रोत्साहन देना राज्य का कोष भरना है। वे आजकल की भाँति प्रत्येक व्यापारी को चोर नहीं

"जैसे भौंरा धीरे-धीरे फूलों का रस लेता है, फूलों की पंखुड़ियों और पराग को नष्ट नहीं करता। जैसे मनुष्य, गाय को कष्ट न देकर उसे धीरे-धीरे प्रेम से दुहता है, उसके थनों को कुचल नहीं डालता, उसी प्रकार कोमलता के साथ ही शासक को राष्ट्ररूपी गौ का दोहन करना चाहिए।"

समझते थे। धन, आदर और सम्मान का कारण होता था, आलोचना, उपेक्षा या प्रताड़ना का कारण नहीं। वे आज के शासकों की भांति व्यापारियों को धमकियां नहीं दिया करते थे, जैसा कि पिछले दिनों उद्योगपतियों और व्यापारियों की एक सभा में बोलते हुए हमारी प्रधानमंत्री ने कहा—"उद्योगपति और व्यापारी, आर्थिक विकास में आवश्यक योगदान नहीं दे रहे हैं, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।" उन्होंने धमकाते हुए ही यह भी कहा—"उद्योगपति व व्यापारी, परिवर्तनों (सम्पत्ति का सब में समान वितरण) का विरोध न करें, अन्यथा उनका सब कुछ समाप्त हो जाएगा।" एक मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी यह समझ सकता है कि गाय लाठी मारने से दूध नहीं देती। ऐसा करने से वह दूध ऊपर चढ़ा लेती है। फिर भी, राष्ट्रीय गौ को पुचकारने की बजाय उस पर लाठियों की वर्षा की जाती है।

उपचारात्मक कदम

हमारे पूर्वजों ने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार विकासोन्मुख अर्थ-

व्यवस्था का गठन किया हुआ था, उसके अनुरूप आर्थिक नीतियाँ निर्धारित की हुई थीं और राष्ट्र को समृद्ध, वैभवशाली और ऐश्वर्य सम्पन्न बनाया हुआ था। हम आज भी उनसे मार्ग दर्शन पा सकते हैं। यदि हम भी वर्तमान समस्याओं और परिस्थितियों को देखते हुए उपचारात्मक कदम नहीं उठाएँगे तो आने वाली पीढ़ियाँ हमें धिक्कारेंगी। हमें निरंतर घाटे में चलने वाले सरकारी उद्योगों का समुचित प्रबंध, बेरोजगारी की समस्या का हल, नये उद्योगों व व्यापारों को प्रोत्साहन, मंहगाई का नियंत्रण, धनोपार्जन को निरुत्साहित करने वाले करों पर पुनर्विचार, स्वदेशी माल को प्रोत्साहन जितना शीघ्र हो सके करना चाहिये। अन्यथा, हम दरिद्र नारायण के चंगुल से कभी नहीं निकल पायेंगे। इन सबके लिये आवश्यक है कि हम भिन्न-भिन्न वादों के भ्रमजाल में न फँसें। जिस प्रकार एक ऊंट और गधे को एक साथ किसी गाड़ी या हल में नहीं जोता जा सकता उसी प्रकार दो परस्पर विरोधी शासन-पद्धतियों को एक साथ नहीं

> **"जो रक्षा करने योग्य पुरुषों की रक्षा करता है वही शासक समस्त शासकों में शिरोमणि होता है। जो रक्षा के पात्र मनुष्य विद्वान् धनवान्, शूरवीर, धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, स्वामी आदि की रक्षा नहीं करते, उन नाम-मात्र के शासकों की जगत् में कोई आवश्यकता नहीं।"**

चलाया जा सकता। वे लोकतांत्रिक समाजवाद का नारा लगाते हैं। लेकिन लोकतंत्र व्यक्तिगत धन-सम्पत्ति, व्यक्तिगत व्यवसाय, व्यक्तिगत उद्योग, व्यक्तिगत कृषि, व्यक्तिगत व्यापार, व्यक्तिगत स्वामित्व पर आधारित है। समाजवाद सरकारी सम्पत्ति, सरकारी व्यवसाय, सरकारी उद्योग, सरकारी व्यापार, सरकारी कृषि, सब चीज़ों के सरकारी स्वामित्व पर आधारित है। लोकतंत्र व्यक्तिप्रधान है और समाजवाद सरकार-प्रधान। स्वामित्व के लिये दोनों का संघर्ष अवश्यम्भावी है। क्या, इस आंतरिक संघर्ष की पृष्ठभूमि में राष्ट्र कभी समृद्ध, सम्पन्न और धनवान् हो सकता है? एक औसत बुद्धि वाला व्यक्ति भी इसका उत्तर दे सकता है—"नहीं।" लेकिन हमारे बुद्धिमान् नेतागण, इस असम्भव को सम्भव बनाने में, ऊँट और गधे को एक गाड़ी में एक साथ जोतकर चलाने में अपनी जनता की शक्ति का, धन का, साधनों का और समय का अपव्यय कर रहे हैं। भगवान् उन्हें सद्‌बुद्धि दें। ●

—सत्यपाल शास्त्री

आनन्दमार्ग के बारे में कुछ और....

भारत को मिटाने में जो लगे हैं उनमें से एक है 'आनन्द मार्ग, धर्म के नाम पर अधर्म कैसे-कैसे रूप धरता है यह देखना हो तो देखिए, इन नए मतों को। प्रस्तुत लेख में आनन्द मार्ग के सम्बन्ध में कुछ तथ्य प्रस्तुत हैं।
—संपादक

आनन्दमार्ग का दावा है कि उसकी शाखाएँ ५२ ग्रहों पर हैं। हमारी पृथ्वी उनमें से एक है। प्रश्न तो यह है कि ये लोग करते क्या हैं? ये चाहते क्या हैं? इनका लक्ष्य क्या है? संसार भर में आनन्दमार्ग की दो हजार शाखाएँ हैं, जिन में से अधिकतर भारत में हैं। २५ लाख कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। आखिर ये सब क्या करते हैं?

आमलोग आनन्दमार्ग के बारे में बहुत कम जानते हैं। इसके बारे में जो जानकारी मिली है, उससे इसकी गतिविधियों का रहस्य बढ़ा ही है, घटा नहीं।

आनन्दमार्ग की स्थापना श्री प्रभात रंजन सरकार नामक ५५ वर्षीय व्यक्ति ने सन् १९५५ में की थी। इसके संस्थापक किसी समय बिहार के मुंगेर जिले के जमालपुर नगर की रेलवे वर्कशाप में कर्मचारी थे। अभी पिछले दिनों (२९ जून को) इन्हें पटना में गिरफ्तार किया गया। इससे पूर्व २१ जून को पुलिस ने राँची में इस संगठन के प्रधानकार्यालय से हथियार और इन्सानी खोपड़ियाँ बरामद कीं।

बाबा को भगवान माना जाता है

श्री सरकार के अनुयायी उन्हें बाबा नाम से पुकारते हैं। अन्तरंग शिष्यों

फ़ेवह आनन्दमूर्त्तिजी के नाम से पुकारे जाते हैं। वे उन्हें तारक ब्रह्म मानते हैं—भगवान् मानते हैं।

पश्चिम बंगाल के पुरुलिया ज़िले के बगलाता नामक स्थान पर ४०० एकड़ भूमि में आनन्दनगर नाम से दल का नया प्रधान कार्यालय स्थापित किया गया। भारत के अतिरिक्त ताइवान, फ़िलिपीन्स, मलयेशिया और केनिया में भी इस संगठन के सदस्य विद्यमान हैं।

सदस्यता शुल्क दो रुपये वार्षिक है।

इस दल की ३६ पत्र-पत्रिकाएँ हैं, जिन में से ५ दैनिक समाचार पत्र हैं।

कुछ दिन पूर्व भारत सरकार ने विज्ञप्ति निकाली थी कि कोई सरकारी कर्मचारी आनन्दमार्ग का सदस्य नहीं हो सकता। चार सरकारी अधिकारियों ने—जो सबके सब आनन्द मार्गी हैं—न्यायालय में इस आदेश को चुनौती दी। श्री सी० के० दफ़्तरी ने ही उनकी वकालत की। वे मुक़द्दमा जीत गये। सरकार ने अपना आदेश वापस ले लिया।

पुलिस में घुसपैठ

गृह मन्त्रालय का कहना है कि इस दल की एक उल्लेखनीय बात यह है कि इस के अधिकतर सदस्य सरकारी कर्मचारी हैं। गृह मन्त्रालय के एक नोट में कहा गया है कि कुछ पुलिस अधिकारी आनन्दमार्ग के शस्त्र प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेते हैं और इसके लिए अपनी बन्दूकें आदि भी देते हैं। नोट में यह भी कहा गया है कि आनन्दमार्ग ने कुछ ही समय में कश्मीर से केरल तक और राजस्थान से असम तक अपने अड्डे स्थापित कर लिये हैं। इसकी शक्ति और विस्तार की गति उल्लेखनीय है। हिमांचल प्रदेश से लेकर बिहार तक के सीमा वर्त्ती प्रदेशों में यह विशेषरूप से शक्तिशाली हैं। आनन्दमार्ग के आर्थिक स्रोतों के बारे में नोट में कहा गया है कि "आनन्दमार्ग समृद्ध भले ही न हो, किन्तु उसके पास धन की कोई कमी नहीं। पिछले दिनों किये एक सर्वेक्षण के अनुसार बिहार के आधे पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट आनन्दमार्गी थे।"

आपत्ति जनक विचार

प्रत्येक व्यक्ति आनन्दमार्ग का सदस्य नहीं बन सकता। पर्याप्त छानबीन और पट्टियाँ पढ़ाने के बाद ही सदस्य बनाया जाता है। साधकों के चार वर्ग हैं:—तात्त्विक, आचार्य, कापालिक और अवधूत। दीक्षित होते ही इन्हें अपने नाम बदलने पड़ते हैं। अवधूत ध्यान लगाने के लिए अपने पास एक खोपड़ी, बाजुओं की दो हड्डियाँ और एक छुरी रखते हैं। यदि कोई साधक कहे कि उसे मानसिक शान्ति नहीं मिल रही तो उसे उत्तर मिलता है कि "प्रयत्न कर के पाँच नये साधक तैयार करो। तभी तुम्हें आध्यात्मिक शान्ति मिलेगी।"

आनन्दमार्ग का आधार क्या है? आनन्दमार्ग का कहना है कि वह भौतिक

वादी संसार को ग्राध्यात्मिक भूमि पर खड़ा करना चाहता है। ग्रानन्दमार्ग की राजनैतिकशाखा 'प्रउत' नाम से विख्यात है। प्रउत ग्रर्थात् प्रगतिशील उपयोगिता तत्त्व। ग्रंग्रेजी में prout ग्रर्थात् progressive Vitilisation Theory. इसके ग्रनुयायियों के राजनैतिक विचार गड़बड़ हैं। ये पूँजीवाद ग्रौर साम्यवाद (कम्युनिज्म) दोनों के विरोधी हैं। कम्युनिस्टपार्टी (मार्क्सवादी) ग्रौर जनसंघ दोनों की निन्दा करते हैं? इनका कहना है कि शासन सद्विप्रों का होना चाहिए (ग्रानन्दमार्ग ब्रांड सद्विप्रों का!) यदि ऐसा न हुग्रा तो रक्त रंजित क्रान्ति होगी ग्रौर तब सद्विप्रों का शासन स्थापित होगा।

ग्रनेक प्रश्नों पर ग्रानन्दमार्ग के विचार सर्वथा नये हैं। ग्रनेक निराश युवक, जो जीवन में ग्रनायास सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, इसी कारण इनकी ग्रोर ग्राकृष्ट हो जाते हैं।

ग्रानन्दमार्गियों का हिंसा में विश्वास है। "बाबा" की लिखी एक पुस्तक है "A Discussion" इसमें लिखा है कि "हिंसा जीवन का सार है। ग्रहिंसा का ग्रर्थ है मृत्यु।" ये लोग लोकतन्त्र को भी नहीं मानते। लोकतन्त्र के बारे में उक्त पुस्तक में लिखा है कि "लोकतन्त्र का ग्रर्थ है भीड़ का शासन — मूर्खों का शासन। शासन का सबसे ग्रच्छा रूप है सद्विप्रों का शासन।" राष्ट्रवाद के बारे में पुस्तक में लिखा है कि यह एक मानसिक रोग है। सुभाषचन्द्र बोस के बारे में कहा जाता है कि जब "बाबा" सात वर्ष के थे, तब उन्होंने सुभाषबाबू को ग्राशीर्वाद दिया था, इसीलिए उन्होंने इतनी उन्नति की। वह ग्रसफल इसलिए हुए, क्योंकि उन्होंने 'जय हिन्द' सदृश घटिया राष्ट्रवादी नारा लगाया। ग्रानन्दमार्गी समाजवाद के पक्षपाती बनते हैं, लेकिन उनका समाजवाद ऐसा होगा कि उस में जमींदारी प्रथा पुनरुज्जीवित की जायेगी। ये लोग ग्रंग्रेजी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं।

राष्ट्रीय नेताग्रों की निन्दा

क्योंकि यह दल राष्ट्रवाद का विरोधी है, इसलिए राष्ट्रीय नेताग्रों का भी निन्दक है। महात्मा गांधी के बारे में कहा जाता है कि वह ग्रफ्रीका में बन्दर बनकर पुनर्जन्म धारण कर चुके हैं। नेहरूजी के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने नई दिल्ली के एक ग्रानन्दमार्गी ग्राचार्य के घर कुत्ते के रूप में पुनर्जन्म लिया है। डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी के बारे में कहा जाता है कि उनका देहान्त इस-लिए हुग्रा, क्योंकि वह "बाबा" की सलाह लिये बिना ही कश्मीर चले गये।

राष्ट्रीय नेताग्रों का तो इस प्रकार ग्रपमान किया जाता है, लेकिन ग्रानन्द-मार्गी नेताग्रों को महामानव के रूप में चित्रित किया जाता है। उदाहरणार्थ कहा जाता है कि "बाबा" की गद्दी निर्गुण ग्रौर सगुण ब्रह्म की स्पर्शरेखा पर

स्थित है। (कहिए, श्राप इससे क्या समझे?) उनका यह भी कहना है कि १६६२ में चीनी श्राक्रान्ताओं की वापसी और १६६७ में अरबों और इस्राईलियों की विरामसन्धि में "बाबा" का योगदान था।

तृतीय अवतार

आनन्दमार्गियों का विश्वास है कि "बाबा" भगवान् के तृतीय अवतार हैं! प्रथम और द्वितीय अवतार हैं सदाशिव और भगवान् कृष्ण! महाभारत के सब पात्रों ने पुनः जन्म ले लिया है और वे "बाबा" के साथ रहते हैं। उदाहरणार्थ जम्मू के माखनलाल अभिमन्यु हैं। "बाबा" के पुत्र गौतम के बारे में कहा जाता है कि वह पिछले जन्म में भगवान् बुद्ध थे। इसी प्रकार "बाबा" के शिविर में ईसा मसीह, गुरुगोविन्द सिंह और नैपोलियन बोनापार्ट भी हैं।

इन दिनों इस दल में ७०० अवधूत हैं। ये लोग गेरुवे वस्त्र पहनते हैं—पगड़ी भी रखते हैं। मानो ये भी शिकागो के विश्वधर्म सम्मेलन सदृश किसी सम्मेलन में भाग लेने जा रहे हों! लेकिन ये लोग अपनी दाढ़ी-मूँछ कटवाकर आधुनिक भी बन सकते हैं—टैरिलीन के वस्त्र भी धारण कर सकते हैं। लेकिन ये लोग स्वामी विवेकानन्द के बताये मार्ग से ठीक विपरित मार्ग पर चलते हैं। यद्यपि इनकी शब्दावली संस्कृत शब्दों की है, धार्मिकता का पुट लिये है तथापि ये मन्दिरों के विरुद्ध हैं—पूजा के विरुद्ध हैं। ये तो अपने आपको हिन्दू मानते ही नहीं। इनका कहना है कि "हम नये अल्पसंख्यक हैं।" ये न केवल मार्क्सवादी कम्युनिस्टों और जनसंघ के विरुद्ध हैं सभी प्रकार के कम्युनिस्टों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के भी विरुद्ध हैं।

यह है आनन्दमार्ग का रहस्य। इस समय इन का मामला न्यायालय के विचाराधीन है, इसलिए उसका निर्णय होने पर ही निश्चित रूप से कुछ कहा जा सकेगा।

— अपने पर विश्वास रखो।
— ईश्वर तथा मृत्यु को मत भूलो।
— सत्य बोलो तथा सत्य का व्यवहार करो।
— अपनी आत्मा को पहचानो।
— मन को बुद्धि के आधीन रखो।
— अपनी त्रुटियों को घटाने का प्रयत्न करो।
— पाप से घृणा करो पापी से नहीं।
— वृद्धों तथा विद्वानों का सम्मान।
— रोगियों तथा अनाथों की सेवा करो।
— विद्या दान महा दान।

—राम अवतार 'वीर'

—राधेश्याम 'आर्य'

सावधान ! सावधान !!

पोपलीला के विषधर पुनः फुङ्कार मारने लगे

महाभारत युद्ध के बाद राष्ट्र का दुर्भाग्य बढ़ता ही गया। वेदपथ भारतीयों ने छोड़ना प्रारम्भ किया। कुछ ही दिनों के पश्चात् समस्त संसार से वेदपथ का लोप हो गया। पाखण्ड, अन्धविश्वास बढ़ता गया। धूर्तों की बन आई। उन्होंने विभिन्न प्रकार से मूर्त्ति पूजा, अवतारवाद, भूत-प्रेत, जादू टोना, देवता-भवानी आदि का वितण्डावाद फैलाकर जनता को लूटा। शिक्षा-ज्ञान-वेद-मानवता सौम्यता-शान्ति-सम्पन्नता-सफलता धुल धूसरित हो गई। भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता पर पदाघात होने लगा। वेदों का स्थान गपोड़ों से पूर्ण पुराणों ने ग्रहण कर लिया। पंडितों का कार्य पठन-पाठन से हटकर दक्षिणा लेने तक सीमित हो गया। अज्ञानान्धकार में भटकती, फूट-द्वेष तथा ईर्ष्या की चक्की में पिसती हुई भारतीय जनता की अकर्मण्यता ने विश्व गुरु भारत को दासता शृंखलाओं से आबद्ध कर दिया। देश के पतन तथा पराजय की यह चरम सीमा थी। यवनों के नृशंस शासन ने भारतीय संस्कृति को मृत्यु के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया।

राष्ट्र की ऐसी विषम वेला में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने, भारतमाता की गोद में आकर, संघर्ष का सिंहनाद किया। वेद के इस महान पथिक ने वेदों का जोरदार प्रचार कर समस्त राष्ट्र में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक तथा वैदिक क्रान्ति का सूत्रपात कर सत्य का निरुपण किया और मंझधार में डूबती हुई भारतीय नौका का खेवनहार बनकर आर्य संस्कृति का पुनर्प्रतिस्थापन किया।

उस महान् ऋषि तथा उसकी पवित्र आर्य समाज ने आर्य धर्म (हिन्दू और हिन्दुत्व) को दानवता के मुख से खींचकर उसकी रक्षा की। भारतीयों को अपनी शक्ति का ज्ञान कराया। अन्धविश्वासों तथा पाखण्डों और देश भर में फैली हुई पोपलीला पर जोरदार हमला कर दानवता के राक्षस को हतप्रभ कर दिया। पोप-पुजारी-मुल्ला सबके सब लुटेरे आतंकित हो गए। आर्य समाज के बहादुरों ने स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर अपने प्राण पुष्प अर्पित कर स्वाधीनता की यज्ञ-शिखा को प्रज्वलित किया। आर्य समाज एक महान क्रान्ति का प्रतीक बन धरती पर अवतीर्ण हुआ। समस्त वितण्डावाद कांप उठा, लुप्त हो उठा। वेद प्रकाश की किरणों ने पुराण, बाइबिल, कुरान के घनान्धकार को छिन्न विच्छिन्न कर दिया। लेकिन !

देश का दुर्भाग्य पुनः आँखे खोल रहा है

वही पाखण्ड, वही अन्धविश्वास, वही अवतारवाद, वही जड़ता, वही धूर्तता पुनः भारत-भूमि पर जोर पकड़ने लगी है जिसने इस दिव्य धरा पर शक्ति-विहीनता तथा जड़ता का साम्राज्य स्थापित कर देश को गुलाम बनाया था। कहीं पर देवता निकल रहे हैं, कहीं पर भवानी मिट्टियों से निकल रही हैं, कहीं भगवान् का अवतार हो रहा है, कहीं ब्रह्मकुमारियां संस्कृति पर प्रहार कर अंधकार फैला रही हैं, कहीं पर आनन्दमार्गी असत्य का भ्रमजाल फैला रहे हैं, कहीं पर भगवान् असत्य साईं का अभ्युदय हो रहा है। यह है स्वतन्त्र देश की धूमिल झांकी। यह है वेदों की धरती का उत्पादन।

ईसाइयत पहले से ही भारतीयता को मिटाने पर तुली हुई है। ऐसे समय में बड़े ही शर्म की बात है कि स्वयं हिन्दुओं में से ही कोई व्यक्ति अपनी स्वार्थ साधना हेतु हिन्दू जनता को बहकावे में डालकर अन्ध विश्वासों का बाजार गर्म करे।

भगवान सत्यसाँई बाबा अथवा असत्य साईं

इस समय भगवान सत्य साईं बाबा का जोर बढ़ रहा है। लखनऊ के कुछ भागों में भी सत्य साईं बाबा की खूब चर्चा चल रही है। मैं नहीं समझता कि वे सत्य साँई बाबा हैं अथवा असत्य साईं। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि वे भारतीय संस्कृति के दुश्मन हैं। वेदों से अनभिज्ञ, व्यक्तिपूजा के परमोपासक हैं। अपनी पूजा के बहुत बड़े आकांक्षी हैं।

लखनऊ के एक साहब रेलवे में फोरमैन थे। उन्हें घूस-खोरी या इसी प्रकार के अन्य किसी आरोप में मुअत्तल कर दिया गया था। फोरमैन साहब सत्य साईं भगवान की महिमा का गुणगान सुनकर उनके आवास (बंगलौर) गए। वहाँ पर जब सत्य साईं बाबा से वे मिले तब प्रथम वाक्य में ही सत्य साईं बाबा ने पूछा कि क्या आप मुअत्तली के सम्बन्ध में आ रहे हैं। फोरमैन

साहब स्तम्भित हो उठे कि हमारी बात को बाबा जी ने कैसे जान लिया ? वास्तव में इनके अन्दर महान शक्ति है। फोरमैन साहब यह नहीं विचार किए कितनी बार तथा कितने दिनों भटकने के बाद बाबा जी के दर्शन हुए हैं।

और इतने दिनों में बाबा जी के शिष्यों ने उनके जीवन का पूरा इतिहास जानकर सत्य साईं बाबा को पहले ही बता दिया है। खैर ! सत्य साईं बाबा ने फोरमैन साहब को भभूत दिया। उस भभूत की लीला कहें अथवा रेलवे अधिकारियों की दयाशील दृष्टि, पुनः फोरमैन साहब बहाल हो गए। कोई भी कारण रहा हो लेकिन फोरमैन साहब ने जरा सा भी इस बात पर विचार न किया कि क्या भगवान् जो न्यायकारी, सर्वज्ञ सर्वहितकारी परम पिता है वह घूसखोरी में पकड़े गए व्यक्ति को दया से द्रवीभूत कर, सत्व-कानून तथा न्याय का उल्लंघन करेगा ? गलत काम करने वाले को अच्छा फल देगा ? कदापि नहीं हो सकता। भगवान कभी भी ऐसा नहीं करेगा। वह दयालु है, पर साथ ही न्यायकारी भी। कर्मानुसार ही वह फल देता है।

भगवान सत्य साँई तथा अन्धविश्वासों का जमघट

फोरमैन साहब इस समय भगवान सत्य साईं की पोपलीला का जमकर प्रचार कर रहे हैं। नए-नए शिष्य पैदा कर रहे हैं। सभी गलत काम करने वाले लोग अपने पापों को धोने के लिए बाबा जी की शरण में आ रहे हैं। भजन कीर्तन भी होता है। भजनों में केवल बाबा जी का ही यशोगान रहता है। भगवान सत्य साईं बाबा की कई फोटो फोरमैन साहब के कमरे में टँगी हुई हैं। यह फोरमैन साहब फतेह अली कालोनी चारबाग में रहते है और लोकों वर्कशाप में कार्य कर रहे हैं। प्रतिदिन सत्य साईं बाबा की नई-नई करामाती बातें बताते हैं। कभी कहते हैं कि फोटो पर आज रात को अपने आप भभूत टपक पड़ी, कभी कहते हैं कि सेन्दुर टपक पड़ा। यही नहीं, चित्र के सामने प्याले रखे हुए हैं और कहते हैं कि इन प्यालों में अमृत की बूँदें टपकती हैं। कभी-कभी बाबा जी के चित्र से दूध की धारा बहने लगती है। नित्यप्रति ऐसे आश्चर्यकारक करिश्मे सुनकर अन्धविश्वासी लोग खूब आकर्षित हो रहे हैं। यह सब करामात कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति के सामने नहीं बल्कि रात को घटित होती है।

हाँ ! एक बात और मजेदार है। वह, यह कि एक फोरमैन साहब और बाबा जी के दर्शन कर आए हैं। अब दोनों फोरमैनों में इसलिए मनमुटाव हो गया है कि एक साहब कहते हैं कि मैं ज्यादा सिद्ध हूँ तथा दूसरे साहब कहते हैं कि मैं ज्यादा सिद्ध हूँ। इन सिद्धों की ओर औरतें अधिक आकर्षित हो रही हैं।

इसी प्रकार लगभग सभी बड़े नगरों में भगवान सत्य साईं की करामाती

खबरें पहुँच गई हैं। जनता. जो अन्धानुकरण की हिमायती है बिना सोच-विचार किए सत्य साईं को भगवान मानने लगी है।

शिष्य लोग बाबा जी की खूब करामातें बताते हैं जिससे भोली-भाली जनता उन पर श्रद्धा से विश्वास कर सकें। सत्य साईं बाबा को चाहिए था कि वे वेदों का अध्ययन करते और भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार में यशस्वी बनते। लेकिन उन्हें पता नहीं क्या सूझ रहा है ? वे क्यों अन्धविश्वासों के बढ़ावा देकर जनता को धोखे में डाल रहे हैं।

आज की आवश्यकता

आज आवश्यकता तो इस बात की थी कि समस्त हिन्दू समुदाय एकत्र होकर अपने को सुदृढ़ बनाता और ईसाइयत के बढ़ते हुए प्रवाह को रोकने का यत्न करता जिसके कारण उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ा हुआ है। लेकिन राष्ट्र का दुर्भाग्य। हम अपने कर्त्तव्यों को भूलकर अपनी पूजा-प्रतिष्ठा के लालच में फँस गए हैं।

आर्य समाज को जगना होगा

गिरते हुए हिन्दू समाज को आर्य समाज ने बचाया था आज आर्य समाज में भी शिथिलता आ गई है। अधिकारी गण गद्दियों के लालच में फँसे हैं। यही कारण है कि पोप लीलाएँ पुन: सिर उठाने लगीहैं।

आर्य और आर्यत्व (हिन्दू और हिन्दुत्व) की रक्षा के लिए सोते हुए आर्य समाज को जगाना होगा और दानवता के बढ़ते हुए कदमों से संघर्ष करना होगा। आज आर्य समाज के कंधों पर राष्ट्र की महान् जिम्मेदारियाँ हैं। यदि आर्य समाज ने उस महान् दायित्व को वहन नहीं किया तो देश गर्त्त में डूब जायगा। आर्यत्व का अस्तित्व समाप्त हो जायगा।

दयानन्द के सैनिकों से

आर्य समाज और दयानन्द के गीत गाने वालों का मैं आह्वान करता हूँ कि वे आगे आएँ और फैलते हुए पाखण्ड. अन्ध विश्वास तथा दानवता से अपना सर्वस्व त्याग कर भी, डटकर लोहा लें। यही समय तथा इतिहास की पुकार है। ●

"सर्व सत्य का प्रचार कर सबको ऐक्य मत में करा, द्वेष-छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त कराके सबको सुख लाभ पहुंचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।"

—सत्यार्थ प्रकाश

हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर अब भी पालन होता है आगे को होगा, उसकी उन्नति तन, मन धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें।

—सत्यार्थ प्रकाश

'गोली मार दीजिए'

(कवित्त)

वेदों की व्यवस्था थी, अनादि कालमें ही मिली,
जटिल अवस्था पै, विचार सदा दीजिए !
राष्ट्रकी है रीढ़, जनताकी शक्ति मीढ़ जैसी-
उसकी महत्ता-सत्ता, नीतिमें भी लीजिए !
धर्मवीर, कर्मवीर, शूरवीर भारत के-
कायर-कुपूत; मनके, न, कमर कीजिए !
कहे 'कवि पुष्कर' न कोई, दोष-पाप लगें-
गो को जो कि मारे, उसे गोली मार दीजए !

दोहा

किसी जीव का वध किये होता गुरुतर पाप !
दयादृष्टि रखकर हरो प्राणि मात्रका ताप ॥

—जगन्नारायण देव शास्त्री

देवत्व का मोल

सांफ्रांसिस्को (अमरीका) की के-स्ट्रीट से एक अधेड़ उमर के गुजर रहे थे कि एक अमरीकी महिला ने उन्हें पहचान लिया। घुटनों के बल बैठकर उसने दोनों हाथ जोड़ लिए और कहा—"आप तो देवता हैं!" इसके साथ ही उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

उस सज्जन ने महिला को नम्रता-पूर्वक दोनों हाथों से पकड़ कर ऊपर उठाने का यत्न किया। साथ ही उनके मुख से ये शब्द निकले—"मां, देवत्व के लिए यातनाओं के रूप में मोल चुकाना पड़ता है। फिर आपके ये आंसू क्या बताते हैं? मैं इनके अंदर देवत्व की झलक देखता हूं देवत्व को पहचानने के लिए भी तो देवत्व चाहिये।"

यह महिला कौन थी? श्रीमती एमी डडले जिन्होंने स्वर्गीय संस्कृति दूत श्री भाई परमानंदजी से हिंदुत्व की दीक्षा ली थी। और ये सज्जन थे स्वर्गीय लाला हरदयाल।

—धर्मवीर

सारा जग परिवार हो गया

—प्रकाशचन्द्र कविरत्न

महर्षि दयानन्द गृह त्याग कर शैला ग्राम में एक ब्रह्मचारी से ब्रह्मचर्य दीक्षा लेकर चैतन्य नाम से सिद्धपुर मेले में जा रहे थे। मार्ग में ग्राम के एक परिचित साधु ने इन के तन पर काषाय वस्त्र देखकर स्नेह पूर्ण भर्त्सना देते हुए कहा :—

अति ही कठिन है वैराग्य, योग मार्ग बन्धु,
विकट,विपद, विहन व्यर्थ न बुलाइयें
छोड़ निजगेह, तोड़ सुखद,स्वजन स्नेह
कांचन सी देह को न रेह में मिलाइये ॥
साधन समस्त हैं सदन में सुखों के सब
क्यों ! न हो निशंक वंशी चैन की बजाइये
छोड़ियें काषाय वस्त्र, तोड़िये ये तूम्बी, मुख
मोड़िये वैराग्य से, तुरन्त घर जाइये
बोले, दयानन्द, है असार वैभव, विलास,
प्रभु प्रेम परमार्थ जीवन में सार है
वित्त, वासना में चित्त जिन का प्रवृत्त अति
उसके निमित्त खुला, मृत्यु-मुख द्वार है
यह अपना है और वह है पराया देखो !
छुद्र प्राणियों का ही तो कुछ ये विचार है।
आत्म-वेत्ता अथवा उदार चेता की पुनीत
दृष्टि में तो सारा ही संसार, परिवार है।

गीत

घर का मोह छोड़ बैठे तो
सारा जग परिवार हो गया,
जो था कभी छुद्र नद वह अब
विस्तृत पारावार हो गया
द्वेष, घृणा, अभिमान ईर्ष्या,
कपटादिक को स्थान कहाँ ! अब।
ओत प्रोत मानस-मन्दिर में
इतना पावन प्यार हो गया।

धाम, धरा, धन का ममत्व अब
मोह सुखद, स्नेही परिजन का।
अति प्रदीप्त वैराग्य-अग्नि में
सारा जल कर क्षार हो गया ॥
आग्रह करने पर न किसी के
अपनी इच्छा से ही हम को
असिधारा सम दुर्गम पथ पर
चलना अङ्गीकार हो गया ॥

जन-ज्ञान-प्रकाशन सगर्व भेंट करता है

एक नयी : अनुपम : अंगरेजी पुस्तक

The Vedic Fundamentals

प्रसिद्ध विचारक श्री आर० डी० शर्मा
द्वारा लिखित

आधार भूत मंतव्यों की प्रभावपूर्ण व्याख्या

सजिल्द मूल्य २ रु० ५० पैसे

किन्तु प्रचारार्थ १५ अक्टूबर १९७१ तक

१० प्रतियों का मूल्य २०)
२५ प्रतियों का मूल्य ४०)
५० प्रतियों का मूल्य ७५)
१०० प्रतियों का मूल्य १२५)

अपना आदेश तुरन्त भेजें

व्यवस्थापक
जन-ज्ञान-प्रकाशन नई दिल्ली-५ [भारत]

—चतुरसेन गुप्त

भारतीय समाजवाद क्या है?

आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व रूसी नेताओं ने जिस वाद के नाम पर क्रान्ति की थी उस पर आज विश्व के अधिकतर निवासी मुग्ध हैं। भारत के अनेक व्यक्ति रूसीवाद की दुहाई देने के साथ-साथ सदा रूस-चीन का मुँह ताकने लगे हैं। रूस को पवित्र तीर्थ, रूसी पुस्तकों को बाइबिल, रूसी नेताओं को अपना आचार्य और रूसी जैसे लाल झंडे की वन्दना करने में गर्व अनुभव करते हैं। रूस के नेताओं की वर्षगाँठ और वर्षी भारत में यत्र-तत्र मनाई जाने लगी है। यह सब इसलिए हो रहा है कि विश्व के अधिकतर मनुष्यों के हृदय-पटल पर रूसी प्रचारकों ने यह अंकित कर दिया है कि गरीब का, मजदूर का, किसान का, विद्वान् का, और मूर्ख को रोटी देने का यदि कोई पवित्र वाद या मार्ग है तो वह केवल एक मात्र रूसीवाद है। यही कारण है जिसके प्रभाव से हमारे राष्ट्र के वे नेता जो अपना ध्येय रामराज्य स्थापित करने की घोषणा किया करते थे आज उन्हें भी इस रूसी चकाचौंध में समाजवाद का नारा बुलन्द करना पड़ा है। आज किसी भी सभा में जाइये, किसी भी पत्र-पत्रिका को उठाकर देखिये उसमें रूसी नकल के साम्यवाद या समाजवाद की घोषणा का समाचार पढ़ने को मिलेगा।

आज भारत के निर्माता स्वघोषित समाजवाद की स्थापना के लिए एड़ी से चोटी तक जोर लगा रहे हैं। समाजवाद की स्थापना के लिए ही कहीं बीमा और बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो रहा है तो कहीं जागीरी और जमींदारी प्रथा समाप्त की जा रही है। नरेश प्रथा तो स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही समाप्त कर दी गई थी, पर कुछ इने-गिने प्रभावशाली नरेशों की प्रसन्नता के लिए जिस "राजप्रमुख" पद और भत्ते देने का वायदा किया गया था वह भी अब

अन्तिम सांस ले रहा है। मौत टैक्स, सम्पत्ति टैक्स, कल्याण टैक्स, सेल टैक्स आदि सैंकड़ों टैक्स भी इसी समाजवाद की स्थापना के लिए लगाये गये हैं। यह भी डंके की चोट कहा जा रहा है कि इसी समाजवाद की स्थापनार्थ निजी कारखाने और व्यवसाय, काश्तकारी और दुकानदारी का भी राष्ट्रीय-करण किया जायेगा। सारांश यह कि आज का समाजवाद जनता को अपनी सम्पत्ति की रक्षा करने की चिन्ता से मुक्ति प्रदान करेगा अर्थात् हमारे राष्ट्र के निवासी ५० करोड़ नर-नारी कठिन परिश्रम करेंगे और राज्य द्वारा उनके परिश्रम के फल को ग्रहण करके उनके खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए वस्त्र, तथा सर ढकने को छत का प्रबन्ध कर दिया करेगा। ऐसा समाजवाद स्थापित होने पर ही राष्ट्र में सुख-शान्ति और मंगल होगा ; तभी यहाँ का मानव दोनों समय रोटी खा सकेगा अन्यथा नहीं। उपरोक्त विचारधारा है जो यहाँ के पढ़े-लिखे, मजदूरों, किसानों, विद्यार्थियों और गुरुओं में बड़ी तेजी से फैलाई जा रही है।

इस विचारधारा के विपरीत एक विचारधारा जिसे मैं आर्य (हिन्दू) अथवा भारतीय आर्य समाजवाद कहता हूँ जिसके कारण ही यह कोटानुकोट प्राणियों का राष्ट्र करोड़ों वर्षों से अबाध गति से चला आ रहा है। करोड़ों वर्षों से ही यहाँ के निवासी दोनों समय भरपेट भोजन करते रहे हैं, प्रतिदिन दोनों हाथों से पुष्कल धन विद्वानों और विद्यार्थियों में वितरण किया जाता रहा है। यहाँ के विद्यार्थी चाहे वेदवाणी संस्कृत पढ़ते हों अथवा प्रान्तीय भाषाएँ, बिना खर्च किये ही शिक्षा पाते रहे हैं। यही नहीं, यहाँ संस्कृत के विद्यार्थी को तो पढ़ाई के साथ रोटी-कपड़ा भी प्राप्त होता रहा है।

जरा विचारिये तो सही, यदि भारतीय समाजवाद में जनता को एक समय भी भर पेट भोजन न मिलता होता तो यह राष्ट्र कभी का लड़खड़ा कर गिर पड़ा होता। यदि यहाँ के समाजवाद में तन ढकने के लिए जनता को वस्त्र नसीब न होते तो यहाँ की जनता सर्दी से सिकुड़-सिकुड़ कर कभी की मिट गई होती, यदि यहाँ की जनता को सर ढकने के लिए छत की व्यवस्था नहीं होती तो निश्चय समझिये—इस देश की कड़ाके की तीक्ष्ण धूप, चार मास की भीषण वर्षा तथा शरद् ऋतु का भयंकर शीत एक भी प्राणी को जीवित नहीं रहने देता। प्राचीन राज प्रबन्धकों ने तो मौत-टैक्स, सेल टैक्स और विदेशी कर्जों के बिना ही भारत के कोने-कोने में भव्य भवनों, मन्दिरों

ग्रौर दुर्गों तथा महान् जलाशयों का निर्माण करके ग्राज के राजनीतिज्ञों को ग्राश्चर्य में डाला हुग्रा है। ग्रतः यह नितांत ग्रसत्य है—सफेद झूठ है कि भारतीय जनता को रोटी, कपड़े ग्रौर मकान की समस्या का समाधान पहले कभी नहीं था जिसे ग्रब रूस-चीन के निर्माताग्रों ग्रौर उनके चेलों का समाजवाद या साम्यवाद ही प्रदान करेगा।

वस्तुस्थिति यह है कि विदेशी समाजवाद वर्ग-विद्वेष, स्वार्थपरता ग्रौर भोगवाद पर ग्राधारित है जिसकी नकल हमारे देश में समाजवाद के नाम-लेवा करने चले हैं। यह वर्ग-विद्वेष ही तो है कि जाति के नाम पर, भाषा के नाम पर प्रान्तों के टुकड़े ग्रौर उनमें ग्रामों के टुकड़े कर जिले बनाये जा रहे हैं। प्राचीन भारतीय ग्रार्य समाजवाद सदा से वर्ग संगठन, परहित तथा त्यागवाद पर ग्राधारित रहा है। इसे प्राचीन साहित्य के दो-चार उद्धरणों से ग्राप भली प्रकार समझ सकेंगे।

पौराणिक काल के एक विद्वान् महर्षि व्यास की एक व्यवस्था को निम्न शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—

ग्रष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

ग्रर्थात् ग्रठारह पुराणों में महर्षि व्यास ने दो ही वचन कहे हैं—परोपकार पुण्य ग्रौर परपीड़ा पाप।

महर्षि व्यास का यह सिद्धान्त केवल भारतीयों के लिए ही नहीं—ग्रपितु सारे विश्व के लिए है। ऐसा नहीं है कि भारतीयों को पीड़ा न दो ग्रौर ग्रभारतीयों को पीड़ित करो।

उपनिषद् काल के ऋषियों की भावना थी :—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

ग्रर्थात् सब प्राणी सुखी हों, सब नीरोग हों, सब एक-दूसरे का कल्याण देखें, कोई किसी को दुःख न दे। वैदिक ऋषियों की यह भावना भी मानव मात्र ही नहीं, प्राणि मात्र के लिए थी। इसमें भी मेरे-तेरे को स्थान नहीं था।

एक ग्रौर ग्राचार्य के कथन पर ध्यान दें:—

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं लोकाः समस्ताःसुखिनो भवन्तु ।।

अर्थात् प्रजा का कल्याण हो, प्रजापालक का कल्याण हो, राजा लोग पृथ्वी का पालन न्याययुक्त विधि से करें। गौओं का कल्याण हो, ब्राह्मणों का कल्याण हो और समस्त लोकों के निवासी सुखी हों।

यह तो हुई, आचार्यों की पवित्र भावना, अब—

वैदिक युग के एक आर्य नरेश महाराजा अश्वपति की आदर्श राजव्यवस्था पर भी ध्यान दीजिये। महाराजा उच्चस्वर से घोषणा करते हैं—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः
नानाहिताग्नि र्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ।।

अर्थात् मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, कोई कंजूस नहीं, कोई शराबी नहीं, कोई मूर्ख नहीं, कोई ऐसा नहीं जो अग्निहोत्र न करता हो और कोई व्यभिचारी नहीं, जब व्यभिचारी नहीं तब व्यभिचारिणी कहाँ हो सकती है।

आर्य नरेश की उक्त घोषणा के होते हुए क्या संसार का कोई विद्वान् यह कहने का साहस कर सकता है कि भारतीय आर्य समाजवाद में रोटी, कपड़े और छत की समस्या थी ! यहाँ तो चोरों का भी डर नहीं था, यहां तो कंजूस ही नहीं थे, फिर राष्ट्रीयकरण कैसा ? यहाँ तो मूर्ख ही नहीं थे, फिर शिक्षा की समस्या कैसी ? यहाँ तो व्यभिचारी ही नहीं थे, फिर चरित्र निर्माण सम्मेलन क्यों ? यहाँ पर तो सब अग्निहोत्र में "इदं न मम" अर्थात् यह मेरा नहीं है, कहने वाले थे। फिर मेरे-तेरे का झगड़ा कैसे होता ?

क्या आज का कोई राष्ट्र साहसपूर्वक कह सकता है कि मेरे राज्य में चोर नहीं हैं। है किसी राष्ट्र में यह हिम्मत जो सर उठाकर घोषणा करे कि मेरे राष्ट्र में कोई व्यभिचारी नहीं है। है कोई माई का लाल—ऐसा राष्ट्र—जो अभिमान से कह सके कि मेरे राज्य में कोई मूर्ख और कंजूस नहीं है। है कोई ऐसा राज्य जो डंके की चोट ऐलान करे कि मेरे राष्ट्र में कोई शराबी नहीं है। जब आज के राष्ट्रों में, चोरी, शराब, व्यभिचार, कंजूसी और मूर्खता जैसी लानत से अपने राष्ट्र को युक्त घोषित करने का साहस नहीं है तब फिर आज के राष्ट्रों में यह कहाँ हिम्मत, जो कह सके कि हमारे राष्ट्र के निवासी

"इदन्न मम" अर्थात् "यह मेरा नहीं है" का त्यागभाव रखते हैं। अब दूसरे आर्य नरेश महाराज शिवि की घोषणा के साथ आज की दशा को मिला कर देखिये :—

धिक्तस्य जीवितं राज्ञो राष्ट्रे यस्यावसीदति।
द्विजोऽन्यो वा मनुष्योऽपि शिविराह वचो यथा॥

म० अ० अनु० अध्याय ६१।२९

अर्थात् महाराजा शिवि कहते हैं कि जिसके राज्य में ब्राह्मण तथा अन्य कोई भी मनुष्य भूख से पीड़ित होता है उस राजा के जीने को धिक्कार है।

क्रोशन्त्यो यस्य वै राष्ट्राद् ह्रियन्ते तरसा स्त्रियः।
क्रोशतां पतिपुत्राणां मृतोऽसौ न च जीवति॥

जिसके राष्ट्र में रोते हुए पति और पुत्रों के बीच से रुदन करती हुई स्त्री हरी जाती है, वह राजा मरे हुए के तुल्य है। अरे! आज के शासको और समाजवाद का नाम लेने वाले नेताओ! अपनी छाती पर हाथ रख कर इसे पढ़ो और आज की दशा पर ध्यान दो।

अतः यह बात सूर्यवत् प्रकाशित है कि आज विश्व का कोई भी राष्ट्र, उक्त भारतीय नरेश महाराज अश्वपति की घोषणा का आदर्श अपने राष्ट्र में सर्वांश में तो क्या शतांश में भी दिखाने का साहस नहीं कर सकता। यह हुई आर्य नरेशों की घोषणा, किन्तु आप जरा—महाभारत काल के मनीषी विद्वान् महात्मा विदुर के समाजवाद की व्यवस्था पर ध्यान दें वह तो और भी मनन करने योग्य है—

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्॥

अर्थात् इन दो पुरुषों के गले में भारी पत्थर बांधकर जल में डुबो देना चाहिए, एक उसे जो धनी होकर दाता न हो, दूसरा वह जो निर्धन होकर परिश्रम न करे आज परिश्रम से जी चुराने वाले ही तो राज्यमन्त्री बनने की धुन में राष्ट्र में वर्गविद्वेष विद्वेषकों को जन्म दे रहे हैं। आश्चर्य की बात है कि आज का नेता जनता से तो दान माँगता है किन्तु स्वयं फूटी कौड़ी भी राष्ट्र कल्याण में दान देता नहीं सुना जब कि वह स्वयं लाखों की कोठी और कार का स्वामी होता है।

फिर महात्मा विदुर जी कहते हैं :—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥

अर्थात् ये दो पुरुष स्वर्ग से भी ऊपर विराजते हैं जो निर्धन हो कर भी दाता हों और जो सामर्थ्यवान् होकर भी क्षमाशील हों।

इसी प्रकार अनेक ऋषियों, सन्तों और आचार्यों के हजारों ऐसे वचन हैं जिन पर लक्षों वर्षों से भारत चलता आ रहा है। भारतीय इतिहास के हजारों पन्ने ऐसे त्यागियों, तपस्वियों, वीरों और वीरांगनाओं से रंगे पड़े हैं।

भारतीय आर्य समाजवाद सम्बन्धी कुछेक ऐसे सिद्धान्त देना भी आवश्यक है जो केवल सिद्धान्त तक ही सीमित नहीं व्यवहार में भी आते हैं। तथा जिन से भारतीय समाज एक के कारण दूसरे से सम्बन्धित होकर चट्टान की तरह अब तक चला आ रहा है। हाँ, आज के कुत्सित वादों के प्रचार से भारतीय समाज अपने सन्मार्ग से हट कर कुमार्ग की ओर भागा जा रहा है।

व्यावहारिक आदर्श—

अधिकांश भारतीय जनता ग्रामों में निवास करती है। उसके पारस्परिक व्यवहार पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें महान् भारतीय समाजवाद के दर्शन होते हैं। जरा मान लीजिये:—

१०० घरों का एक ग्राम है। उसमें २० घर खेतीहरों के हैं, ६० घर सहायक खेतीहर मजदूरों के हैं। शेष २० घरों में ब्राह्मण, वैश्य, नाई, लुहार, कुम्हार, तेली, कहार, राज, बढ़ई, जुलाहा, चमार, भंगी आदि हैं। अब इनका परस्पर व्यावसायिक संगठन देखिये और फिर भारतीय समाजवाद की तुलना कीजिये। कैसा अपूर्व यहाँ का संगठन है। किस प्रकार एक दूसरे से सारा ग्राम प्रेमपूर्वक बंधा हुआ है। देखिये:—

१—ग्राम में एक नाई कहता है, वह ग्रामभर के लोगों की हजामत बनाता है। कई प्रकार से ग्राम भर की सेवा करता है। उस बेचारे को हजामत बनाने में पैसों के दर्शन नहीं। फिर भी वह भूखा नहीं मरता, ग्राम में उसकी रोटी, कपड़े और छत की पूरा व्यवस्था है।

२—धोबी को लीजिये। ग्राम भर के कपड़े धोता है पर धुलाई पैसों में नहीं मिलती, परन्तु फिर भी उसके रोटी, कपड़े और मकान के साधन ग्राम में प्रस्तुत हैं।

३—बढ़ई, लुहार और कुम्हार वर्ष भर ग्राम वालों के लिए खेती के औजार, मकान बनाते और उनकी मरम्मत करते हैं, तथा मिट्टी के बरतनों से ग्राम वालों की आवश्यकता पूरी करते हैं। इन्हें भी नोटों के दर्शन नहीं होते परन्तु इन सबकी रोटी, कपड़े और मकान की समस्या का समाधान ग्राम से विना किसी कष्ट के होता है।

४—एक ब्राह्मण परिवार भी इसी ग्राम में बड़े आनन्द से रहता है। यह ब्राह्मण देवता न किसान का हल चलाता है और न गोबर उठाता है, फिर भी है सारे ग्राम भर का पूज्य। यह ब्राह्मण देवता तो वर्ष भर ग्राम निवासियों की मंगल कामना की माला जपने में लगा रहता है। इन्हें तो रोटी कपड़े की समस्या का कभी भान भी नहीं होता। उत्तम से उत्तम जो वस्तु ग्राम निवासी पाते हैं उसका एक भाग पहले ही इस ब्राह्मण देवता के घर श्रद्धा से पहुँच जाता है।

५—ऐसे ही महाजनों के दो घर भी इसी ग्राम में मौज से रहते हैं, ग्राम भर में किसी से इनकी लड़ाई है न झगड़ा, सब के व्यवसाय में ये साझीदार रहते हैं। ग्राम भर के लोग इन्हें लाला जी या सेठ जी कह कर पुकारते हैं। वह लालाजी गुड़ के बदले में तेल, कपास के बदले में दियासलाई, धान के बदले में हल्दी, आलू के बदले तमाखू, अनाज के बदले में नमक, इसी अदला-बदली से अपनी गुजर करते हुए लाला जी और सेठ जी कहलाते हैं। परन्तु आज के समाजवाद में इनकी बड़ी दयनीय दशा हो रही है। इसी प्रकार अन्य वर्गस्थ परिवार भी-अपना-अपना धन्धा करते हुए एक दूसरे से प्रेमपूर्वक सम्बन्धित होते हुए सुखी जीवन व्यतीत करते हैं।

ग्रामवासियों की रोटी की व्यवस्था के लिए प्रत्येक ग्रामनिवासी का यह धर्म था कि वह अपने यहाँ उत्पन्न अन्न आदि का भाग ब्राह्मण, नाई, भंगी, बढ़ई, कुम्हार, धोबी आदि उन सभी को दे जिनसे साल भर काम लेता रहा है। अन्न ही नहीं—फसल की कोई भी वस्तु जो उसके यहाँ उत्पन्न हुई है, इन सभी व्यक्तियों को देता था। फिर चरित्र की उच्चता देखिये। इन सब लोगों को देने से पहले अपने उपयोग में लेना पाप समझता था। विवाह आदि मंगल अवसरों पर इन सभी बन्धुओं को एक निश्चित वस्तु और धन देता था। फिर न देने में झगड़ा और न लेने में तरकार। ऐसा था हमारा प्राचीन आर्य समाजवाद।

सारांश यह कि एक ग्राम में विभिन्न प्रकार के निवासी बिना रूसी समाजवाद के अपना-अपना काम भली भाँति करते थे। उनमें न कोई भूखा मरता था न नंगा फिरता था और न सुनसान वीरान में सोता था। सभी अपने-अपने स्थान पर और स्थिति में मस्त रहते थे। वे प्राप्त वस्तु में सन्तोष करते थे। अप्राप्त वस्तु की इच्छा तक भी नहीं करते थे। पराये धन को पत्थर और पर नारी को मातृवत् समझते थे। यह था हमारा प्राचीन भारतीय आर्य समाजवाद जिस पर हमें अभिमान है।

महान् चरित्र—

व्यावहारिक और राजनैतिक संगठन के साथ अब जरा हमारे राष्ट्र के उच्च चरित्र के भी दर्शन करिये। हमारे आर्य समाजवाद में चरित्र का जो उच्च आदर्श है वह संसार के किसी भी कोने में, किसी भी वाद में, किसी भी नेता की वाणी और व्यवहार में नहीं मिलेगा। सहस्रों, लक्षों वर्षों से हमारे देश के जीवन में ये उत्तम व्यवस्थाएँ अबाध गति से चली आ रही हैं। हमारे देश का दुर्भाग्य है कि हम पश्चिमी चकाचौंध के चक्कर में फंसकर अपने भारतीय आदर्शों को बड़े वेग से तिलांजलि देते जा रहे हैं। हमारा चारित्रिक आदर्श जिस प्रकार चला आ रहा था वह एक दो घटनाओं से आप भली प्रकार समझ सकेंगे।

हमारे ग्रामवासी चाहे वे ब्राह्मण हों या वैश्य, जाट हों या राजपूत, गूजर हों या अहीर, मुगल हों या पठान, भंगी हों या चमार सभी अपने ग्राम की बेटी को अपनी बेटी मानते थे, सभी ग्रामीण उसके पति का अपने को "गमिया सुसर" समझते थे, यहीं तक नहीं जिस ग्राम में अपने ग्राम की लड़की का विवाह हुआ है उस ग्राम के कुएँ पर पानी पीने में भी संकोच किया जाता था, कितना था हमारा उच्च विचार।

चारित्रिक दृष्टि से हमारे ग्राम संगठन में नाई का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वह अपने यजमानों की बहू-बेटियों को ससुराल से पीहर और पीहर से ससुराल पहुँचाया करता था। सैकड़ों वर्षों से चरित्र हीनता की एक भी ऐसी घटना नहीं सुनी गई, जैसी आज के विदेशी समाजवादी युग में आये दिन होती रहती हैं। आज एक बालिका जिस गुरु से पढ़ती है वही गुरु उसे हथिया बैठता है और विवाह के लिए अदालत में जा उपस्थित होता है। आज का एक शिक्षित युवक एक बालिका से प्रतिवर्ष भाई दूज को राखी बंधवा कर

बहिन मानता है और समय आते ही विवाह के लिए निर्लज्जता के साथ कोर्ट के सामने जा धमकता है। साथ ही राष्ट्र के नेताओं के आशीर्वाद और सर्टिफिकेट भी साथ लिये फिरता है। उधर कन्या के माता-पिता सिर धुन-धुन रोते हैं। इधर इस निर्लज्ज युवक की ऐसी घृणित करतूतों ने आज के युग में हजारों ललनाओं और परिवारों का जीवन दूभर कर दिया है। चरित्र-हीनता का नंगा नाच ! फिर चरित्र निर्माण की बातें ! याद रखिए ! सच समझिए ! चरित्र निर्माण की चाबी तो भारतीय आर्य समाजवाद में हैं जहाँ धनुर्धर लक्ष्मण अपनी भाभी भगवती सीताजी के लिए घोषणा करते हैं—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

मैं सीता के केयूरों और कुण्डलों को नहीं पहचानता। हाँ, उनके चरणों के नूपुरों को अवश्य पहचानता हूँ क्योंकि मैं तो नित्य उनके चरणों की वन्दना करता था। इसी भाव को बरेली निवासी कविरत्न पं० राधेश्याम जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है:—

मैंने तो चरण निहारे हैं, देखे माता के कान नहीं।
मैं तो बिछुओं का सेवक हूँ, कुण्डल की कुछ पहचान नहीं ॥

हमारे ग्रामों में एक और बड़ी ही उत्तम प्रथा थी। जिस प्रथा पर एक रूस क्या—विश्वभर के समाजवाद, साम्यवाद न्योछावर कर दिये जायें तो भी बहुत कम हैं।

हमारे यहाँ विवाह के अवसर पर न्योता देने की प्रथा थी, कहीं-कहीं यह प्रथा अभी भी सिसक रही है। इस प्रथा का विशेषतः विवाह से सम्बन्ध था, विवाह के अवसर पर ग्राम निवासी बिना किसी जात-पांत के भेद भाव के एक रुपया नकद और दूध आदि सामग्री भी देते थे। फिर जब दूसरे के विवाह का अवसर आता तो वह एक रुपया पुराना और एक रुपया नया देना अपना धर्म मानते थे। यह रुपया बिना ब्याज और बिन माँगे ही दिया जाता था। कभी-कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि एक परिवार जिसके यहाँ ४० वर्ष पहले विवाह हुआ था तब से अबतक वह ग्राम भर में विवाहों पर न्योता बांटता रहा है। अब ४० वर्ष पश्चात् उसके यहाँ विवाह होने पर वही पुराना एक रुपया आता है। उस ४० वर्ष पुराने एक रुपये को न वह माँगने जाता

है और न उसका व्याज ही मांग सकता है।

इस प्रकार विवाहादि मंगल अवसरों पर ग्राम निवासी एक दूसरे की नाना विधि सहायता करते थे।

बड़प्पन-छुटपन और गरीबी-अमीरी का विचार छोड़ सभी लोग विवाह में लड्डू बांधते, कचोरी थपकते, पापड़ बेलते, दाल साफ करते और बेसन तक पीसते थे। यह सब कार्य वर्ग-विद्वेष से नहीं वर्ग-संगठन से प्रेरित होकर किया जाता था। इस प्रकार के कार्य करने में लज्जा नहीं—आनन्द आता था। आज ऐसी उत्तम प्रथा का विदेशी समाजवाद से उत्पन्न वर्ग-विद्वेष के कारण लोप हो रहा है।

हमारे देश में विवाह के अवसर पर एक ऐसी प्रथा थी जो बहुत ऊँचे आदर्श की प्रतीक थी। वह सुनिये:—

एक ग्रामीण जब अपने पुत्र की बारात लेकर दूसरे ग्राम में जाता था, तब वह उन सभी लड़कियों को जो उसके ग्राम की इस ग्राम में विवाही हैं, एक रुपया और मिठाई देना अपना धर्म समझता था। वे लड़कियां किसी भी जाति, किसी भी धर्म तथा गरीब-अमीर कैसी ही स्थिति की क्यों न हों—सभी को अपनी पुत्री मानकर उनके आदरार्थ उन्हें भेंट देना अपना धर्म मानता था। वे देवियां भी अपने ग्रामीण भाई का नारियल और तिलक से स्वागत करती थीं। फिर चाहे वह ग्रामीण भाई ब्राह्मण हो और वह ग्रामीण पुत्री मुसलमानी। गमिया भाई-बहिन के पवित्र सूत्र में जो बँधे हुए हैं।

एक बार एक जैन लाला जी अपने लड़के की बारात ले गये। जैन लाला जी को पता चला कि वहां ३०० मुस्लिम पुत्रियां और १०० हिन्दुओं की विभिन्न वर्णस्थ पुत्रियां विवाही हैं तो बिना संकोच के जैन लाला जी ने सभी कन्याओं के घर एक-एक रुपया और चार-चार लड्डू भेजे। उधर उन देवियों ने भी नारियल और तिलक से अपने ग्रामीण भाई का स्वागत-सत्कार किया। यह था हमारे यहां का उच्च आदर्श, जिस पर हमें अभिमान है। हम डंके की चोट घोषणा कर सकते हैं कि आओ! विश्व के लोगो! हमारे जैसा आदर्श वाद तथा हमारे जैसा वह पवित्र वैदिक वाद जिसमें राग है न द्वेष, लड़ाई है न झगड़ा, छीना-झपटी है न कुढ़ना, मेरा है न तेरा, सभी एक-दूसरे के प्रेम पाश में बंधे हुए एक दूसरे का आदर सत्कार करते हैं, अन्यों के सुख-दुःख को अपना अनुभव करते हैं। इसी में वे अपने ग्राम का, ग्रामनिवासियों का,

राष्ट्र का, राष्ट्र के सभी निवासियों का, यहीं तक नहीं—विश्व भर का कल्याण मानते थे। तभी तो यहाँ के आचार्य बारम्बार घोषणा करते रहते थे कि:—

> अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
> उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

आज जनतन्त्रात्मक राज्य है। राज्य का प्रत्येक निवासी येन-केन राजगद्दी पर बैठने को आतुर है। इसके लिए दिन-रात चुनाव लड़े जाते हैं, छीना-झपटी होती है। नैतिक पतन चरम सीमा को भी लाँघ जाता है। यह सब क्यों? केवल मेरे-तेरे के कारण। राज्य पहले भी थे, गद्दी पर बैठने वाले भी थे। किन्तु ऐसी घृणित और राष्ट्रघाती छीना-झपटी कभी नहीं थी, जैसी हो रही है।

प्राचीन काल के मर्यादा पुरुषोत्तम राम और भाई भारत दोनों का राज्य त्याग का उज्ज्वल उदाहरण है कि उन दोनों ने राजगद्दी को ठोकर मारी और अटल घोषणा पर आचरण किया कि यह राज्य मेरा नहीं है। राम ने रावण को मारा, लंका का राज्य अपने किसी भाई को न देकर रावण के ही भाई को सौंप दिया। बाली को मार कर पंपापुर की राजगद्दी पर उसके भाई सुग्रीव को ही बिठाया, अपने भाई को नहीं। राम चार भाई थे। यदि उनमें राज्य-विस्तार की लिप्सा होती तो लंका, पम्पापुर और न जाने कहाँ-कहाँ पर अपने राज्य स्थापित कर देते।

जरा आप महाभारत में भीष्म को देखें कि अपने पिता महाराज शान्तनु की खातिर राज्य त्याग के लिये ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हैं।

दूर न जाइये! ४-५ शती पहले मेवाड़ के महाराणा लाखा जी के पुत्र चूण्डा जी ने अपने पिता की इच्छा पूर्त्यर्थ राज्य त्याग करने के लिए आजन्म विवाह न करने की प्रतिज्ञा पर आचरण किया था। मेवाड़ के दूसरे महाराणा राजसिंह जी के छोटे पुत्र कुंवर भीमसिंह ने भी अपने पिता की प्रसन्नता के लिए मेवाड़ त्याग का व्रत लिया था, जिसके वंशज आज भी बनेड़ा राज्य के स्वामी हैं।

भारतीय विचारधारा में त्याग की प्रतिष्ठा, है—भोग की नहीं। जिस किसी ने भी राज-लिप्सा के कारण कोई अनर्थकारी कार्य किया—उसकी,

से समझ ले कि इस देश के लोग सदा त्यागवाद के पूजक रहे हैं, पूजक रहेंगे। भोगवाद के शत्रु रहे हैं और शत्रु ही रहेंगे। अतः देश बन्धुओ! विदेशी चकाचौंध में फंस कर भोगवादी मत बनो, त्यागवादी बनो, एक-दूसरे को लड़ाकर राजगद्दी प्राप्त करने की लिप्सा छोड़कर राष्ट्र को संगठित करो। दूसरे की जेब पर हाथ साफ करने की नीयत छोड़ अपनी जेब से—जो बन पड़े—राष्ट्र की सेवा में देने का व्रत धारण करो। इसी में देश का और देशवासियों का कल्याण निहित है।

जन्म-मृत्यु दो भूल-भुलौने

शिशु का जन्म बधाई बाजी लगे भाट बंदी यश गाने,
कुल-वधुओं के मधुर कण्ठ से फूट पड़े सोहर के गाने।
भाँति-भाँति उपहार प्राप्तकर चले जा रहे पौनी-पौने।।
बालक बढ़ विद्वान् विपुलमति देश-विजेता नेता होगा,
हँसी मृत्यु कह उठी 'नहीं, यह मेरा चतुर चहेता होगा।
रोक सकेंगे नहीं इसे इस जगके पोती-पोते छौने।।
निश्चित नहीं कि कब किसकी यह जीवन-यात्रा होगी पूरी,
देर सबेर सभी को मंजिल तै करने की है मजबूरी।
चले जा रहे सब अनजाने निश्चित महासेज पर सोने।
घट से गये प्राण, मरघट तक संगी साथी रोते आये,
कोई अञ्जलि-दान दे रहे, कोई श्रद्धा-सुमन चढ़ायें।
कितने आँसू-अर्घ्य चढ़ाते खोल नयन-पंकज के दाने।।
देखा जिसका ठाट, चढ़ी है आज चिता पर उसकी ठठरी,
ज्योति ज्योतिसे मिली और यह कायाहुई राखका गठरी।
एक राह से सभी जा रहे काले, गोरे, लूले, बौने।।
आत्मा अजर-अमर शाश्वत कब उसको जन्म-मरणमें छूते?
उसके ऊपर चल न सकेंगे महाकालके भी बल-बूते।
शरन गहो प्रभु चरणों की तो मिट जायें सब भूल-भुलौने।।

रा० ना० द०

वेदों में गाय का वर्णन

—रामशरण वशिष्ठ

वेदों में गौ शब्द बहुत व्यापक रूप रखता है। इस शब्द के यौगिक अर्थ हैं। साधारणतया यह शब्द गाय के अर्थ में बोला जाता है। परन्तु निरुक्त के अनुसार यह गाय के अतिरिक्त पृथिवी, वाक्, रश्मि, इषु, इन्द्रिय, आप: (जल), दुग्ध (दूध) आदि के लिए भी आता है। मीमांसक जी के लेख के अनुसार इस शब्द के ४७ अर्थ हैं। हम यहाँ पर कुछ मंत्र दे रहे हैं जिन में इस शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग पाया जाता है।

ऋ० १-१६४-१७ में यह उष: काल का वाचक है। ऋ० १०-१११-३ में इस का अर्थ पृथिवी है। ऋ० १०-१०३ में और ऋ० १९-१३-६ में गो जंतु के और ऋ० १०-१३३-७ में भी पृथिवी का अर्थ है। ऋ० १०-२७-१४ में यह आकाश का वाचक है। ऋ. १०-९६-११ में इस का अर्थ सूर्य होता है। ऋ० ८-४५-३० में इसका अर्थ वर्षा है। ऋ० १०-४६-३ में इस के अर्थ मेघ हैं। ऋ० ८-५४-१०-११ में यह दक्षिणा-का द्योतक है जो यज्ञों में पुरोहित को दी जाती है। ऋ० ८-८९-११ में यह वाक् की जगह आता है। ऋ० ९-१०८-६, गाव: के अर्थ नदियाँ हैं। ऋ० १०-६८-६ में यह दिन-रात के अर्थो में आया है। ऋ० ८-८९-७ में यह सूर्य की रश्मि का वाचक है। पं० भगवद्दत्त जी ने अपनी पुस्तक Story of creation में cow rays का वर्णन बहुत विस्तार से किया है। पृष्ठ ३०१ से ३०८ और ऋ० ७-३६-१ में 'विरश्मिभि: संसृजेसु यो गा: यहाँ पर सूर्य की रश्मियां अर्थ है। ऋ० VI-६४ में भी ऐसा वर्णन आता है। गौ के और भी कई अर्थ होंगे जिनका हम को ज्ञान नहीं। गोपा का शब्द ग्वाले के अर्थ में और परमात्मा के अर्थ में भी आता है। इसी प्रकार गोष्ठी का अर्थ वर्षा का घर मेघ है।

यह शब्द जिन वेद मंत्रों में साधारण गाय का वाचक है वे भी बहुत हैं। पं० सातवलेकर जी ने ऐसे ५०० से अधिक मंत्र वेदों से एकत्रित किये हैं और एक पुस्तक लिखी है। परन्तु हम यहाँ विस्तार के भय से केवल कुछ मंत्रों का वर्णन करेंगे। गाय का वर्णन अधिकतया ऋ० १-१६४-२६-२७,

पृ. ४.५८-३ से ६, ६-२८, ६-५४-१ से ७, ४-५-३७, १०-१९, १०-१६९, में पृ. (यजु.) १२-३२, १३-४३, और अथर्व २-२६, ३-१०, ३-१२, ३-१४, ४-२९, ५-१८, ६-५९, ८-२-१५-१६, ८-७-२५, ९-४-४, ९-४-१९, २०, २१-१२-१-१२, २-४-६, ८, १८-३-६८, १८-४-३०, ३२.३३ में आता है। अथर्व वेद के १० वें काण्ड के ९वें और १०वें सूक्तों में शतौदनी और वशा गाय का विस्तार से वर्णन है। गाय को वैदिक काल में धन कहा जाता था। गाय का मनुष्य मात्र को बहुत लाभदायक होना बार-बार वर्णित है। गाय का दूध बलकारक भोजन है। (१०-१७५-२) निर्बलता को दूर करता है। (पृ. ६-२८-६) गाय का दूध गरम कर के पीना चाहिए पृ. X-१७९-३। घी से यज्ञों में हवि दी जाती है। बैल खेती करने के काम आते हैं। गाय के बछड़े व बछड़ियां होती हैं (८-८२-१३) जिन से धन बढ़ता चला जाता है। (अ० III-११) गाय कई रंगों की होती है, सफेद, लाल, काली, पीली, डब्बों वाली। काली गाय का दूध सर्वोत्तम बताया है (अ. १८-४-३४) पीली गाय अधिक दूध देती है। (अ. १०-९) दूसरे दूध देने वाले जानवरों के दूध की तुलना पृ. २१-६०, में की गई है और बताया है कि गाय का दूध सर्वोत्तम है। वैदिक काल में आर्य लोग घरों में गाय रखते थे। घरों में दूध-घी-दही के भरे घड़ों का वर्णन अ. ३-१२-७ और अ. १८-३-६८ में भी मिलता है। घरों में गाय के बछड़ों बालकों के साथ खेलते देख कर चित्त प्रसन्न होता है (३-१२-३) गाय के चरने को जाने और वापस आने का वर्णन X-१९ पृ. में है। कई वेद मंत्रों में प्रार्थनाएँ हैं कि गाय चरागाह से घर वापस आ जाये, गुम न हो, कहीं गिरे नहीं। (X-१९) गाय की गोष्ठियों का मंत्रों में वर्णन मिलता है। यह भी बताया है कि घी आयुवर्धक है (अ. १ १३-) पृ. ८-१०-१५, १६ में गाय को 'गां अनागां अदितिम्' बताया है। वह शान्त स्वभाव वाली है। ऐसा पता चलता है कि गाय को पिछले पाँवों से बांधे (पृ. ४-१२-६) हरे घास की चरागाह के लिए भी प्रार्थना मंत्र है। (अ. ८-४४-३) गायों को सुन्दर वस्त्र और सोने के भूषणों से सजाने का भी वर्णन कई मंत्रों में पाया जाता है। (अ. ८-५४-१० पृ. १०-१७५-२) गाय कन्या के विवाह में वर को दहेज में भेजी जाने का वर्णन पृ. १०-८५-१३ में है। गाय रूपी भेषज रोग निवारण करने के लिए दिये जाने का वर्णन पृ. १०-९७ में आता है। गाय ब्राह्मण को दान किये जाने का कई स्थानों पर

१६. ज्ञान-प्रकाश

—हरिशरण सिद्धांतालंकार
—दीनानाथ सिद्धांतालंकार मूल्य १)५० पैसे

आर्य समाज के २ विद्वानों की लेखनी से सत्यार्थप्रकाश का सार जिस आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है वह प्रचार के लिए अनुपम है। सत्यार्थप्रकाश के गूढ़ रहस्यों तक पहुंचने के लिए ज्ञान-प्रकाश पढ़िए और प्रसारित कीजिए।

१७. वेद-ज्योति

४०० मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह मूल्य ३)।

१८. प्रार्थना मंत्र व्याख्या मूल्य ४० पैसे

हरिशरण जी सिद्धांतालंकार लिखित प्रार्थना मन्त्रों की अनुपम व्याख्या।

१९. भारत की अवनति के ७ कारण

ब्र० जगदीश एम० ए० की लोह लेखनी द्वारा लिखित। पृष्ठ ६८।
मूल्य ४० पैसे। ३५) सैकड़ा।

२०. वैदिक-अध्यात्म-ज्योति मूल्य २)

स्व० स्वामी अनुभवानन्द जी महाराज द्वारा वेद के ४०८ मंत्रों का मुग्ध करने वाला अध्यात्मपरक भाष्य आप के मन-मंदिर में नयी ज्योति प्रदान करेगा। आकर्षक आवरण बढ़िया कागज।

२१. योग-जीवन मूल्य २)

योग का हमारे जीवन में जो महत्त्वपूर्ण स्थान है उस का हृदयग्राही वर्णन ग्रंथ की अपनी विशेषता है। आसन, प्राणायाम, यम

और नियम का महत्त्व हृदय-पटल पर अंकित करने में सूक्ष्म ग्रंथ प्रत्येक दृष्टि से उपादेय है।

२२ नीति-दोहावली मूल्य ८० पैसे

प्रत्येक आवश्यक विषय पर उपयोगी दोहे-कविताएँ और प्रमाण जीवन के प्रत्येक संदर्भ में प्रेरक मार्ग दर्शन आचार्य जगदीश विद्यार्थी द्वारा संग्रहीत

२३ ज्ञान-ज्योति मूल्य ३)

'ज्ञान' मनुष्य को मनुष्य बनाता है। वह ज्ञान वेद की पवित्र ऋचाओं में हमारा मार्ग दर्शन कर रहा है। जीवन के प्रत्येक अंग पर वेद का आदेश स्व० स्वामी सत्यानन्द जी की लेखनी से। उनका माधुर्य वेद की ऋचाओं का हृदय ग्राही स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। १०१ गायत्री मंत्रों सहित—

२४ माँ-गायत्री १)

१०१ गायत्री मंत्रों का पाठ आपके मस्तिष्क को भी, बुद्धि बल देगा। स्वाध्याय के लिए अनुपम।

२५ वैदिक-सिद्धान्त २)

वैदिक-सिद्धान्त अकाट्य हैं। यह स्वयं सिद्ध बात ग्रंथ पढ़ कर हृदयंगम हो जाती है। आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान श्रद्धेय पं० यशपाल सिद्धांन्तालंकार की विद्वत्ता प्रतिभा का चमत्कार देख आप मुग्ध हो जाएंगे। प्रत्येक दृष्टि से अनुपम।

२६ आर्य समाज के नियम ८० पैसे

ज्ञान की अनुपम खोज : महर्षि के प्रिय शिष्य पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या द्वारा लिखित : पहला संस्करण १८९७ में छपा था। आर्य समाज को जानने समझने का अपूर्व साधन है।

२७ लाल–आंधी ८० पैसे

कम्यूनिज्म क्या है, कैसा है यह क्या करेगा इस का असली रूप महात्मा नारायण स्वामी, वैद्य गुरुदत्त और श्री चिरंजीलाल प्रेम की प्रभावपूर्ण लेखनी द्वारा प्रचार के लिये प्रस्तुत है।

२८ धर्म–चिंतन २)

धर्म, ईश्वर, आत्मा और परमात्मा का प्रभावपूर्ण सरल चित्रण श्री ओमप्रकाश त्यागी द्वारा लिखित। पहली बार, अपने ढंग की अनूठी पुस्तक

२९ दहला पागल हो गया ८० पैसे

पौराणिकों के प्रलाप का मुँह तोड़ उत्तर पं० शान्तिप्रकाश जी द्वारा प्रस्तुत है

३० वैदिक विचारधारा २० पैसे

३१ मर्यादा पुरुषोत्तम राम ३० पैसे

राम का आदर्श जीवन, आकर्षक आवरण और लेखक पं दीनानाथ सिद्धांतालंकार—

३२ वैदिक भक्तिवाद २० पैसे १५) सैकड़ा

भक्ति का रस बरसे तो जीवन सरसे, इसे पीने पिलाने के लिए पुस्तक उपस्थित है।

३३ विश्व को आर्यसमाज का संदेश–१५) सैकड़ा

धर्म, सत्य और मानवता के लिए आर्य समाज की आवश्यकता

का प्रभावपूर्ण चित्रण : आर्य समाज का सदस्य बनने का निमन्त्रण पं० भारतेन्द्र नाथ द्वारा लिखित अनुपम प्रचार पुस्तक।

१०) सैकड़ा के उपयोगी प्रचार ट्रैक्ट

३४ आर्य समाज क्या मानता है?	मदन मोहन विद्यासागर
३५ विश्व को वेद का संदेश—	—भारतेन्द्र नाथ
३६ महर्षि दयानन्द की विशेषताए	—महात्मा नारायण स्वामी
३७ आर्य समाज की विचार धारा—	—गंगा प्रसाद उपाध्याय
३८ आर्य समाज की मान्यताएँ—	—पं० राम चन्द्र देहलवी
४० आर्य कौन?	—रघुनाथ प्रसाद पाठक
४१ आर्य समाज के दस नियम	—रघुनाथ प्रसाद पाठक

४२ धर्म ग्रन्थावलोकन १)५०

संसार के प्रमुख धर्म ग्रंथों का प्रामाणिक विस्तृत अध्ययन करने के लिये प्रो० रत्नचन्द शर्मा का महान्, अनुपम ग्रंथ स्वाध्याय के लिए प्रेरक और खोजपूर्ण : सत्य जानने का मार्ग दर्शक संग्रह योग्य।

ईसाइयत सम्बन्धी पुस्तकें

४३ ईसाई पादरी उत्तर दें।	—स्वामी श्रद्धानन्द	३) सैकड़ा
४४ A challenge to the Christian-Faith		३) सैकड़ा
४५ Bible in the Balance	चार्ल्स स्मिथ	१५) सैकड़ा
४६ ज्ञान विज्ञान का शत्रु ईसाई मत	—ओम्प्रकाश त्यागी	१०) सैकड़ा
४७ पोप की सेना का भारत पर हमला	—भारतेन्द्रनाथ	१०) सैकड़ा
४८ ईसाइयों की प्रचार प्रणाली	—जगत्कुमार	१०) सैकड़ा
४९ पादरियों को चुनौती	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	१०) सैकड़ा
५० बाइबल को चुनौती	—ओम्प्रकाश त्यागी	१५) सैकड़ा
५१ और पादरी भाग गया	—ओम्प्रकाश त्यागी	१०) सैकड़ा

—प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री गुरुदत्त

ज्वलन्त प्रश्न

बङ्गला देश और हम

यह बात अब निर्विवाद हो गयी है कि बंगला देश से निष्कासितों में अधिकांश हिन्दू हैं। कोई इनकी संख्या नब्बे प्रतिशत कहते हैं और कोई इससे भी अधिक बताते हैं।

इस पर भी हमारी प्रधानमंत्री यह कह रही हैं कि प्रश्न को साम्प्रदायिक स्वरूप न दिया जाये। और मजेदार बात तो यह है कि विश्व भर के मुसलमान इसे मुसलमानों का प्रश्न मानते हैं। उनके अतिरिक्त जिनका सीधा सम्बन्ध बंगला देश से है, अन्य कोई मुसलमान याहिया खाँ के कार्य को बुरा नहीं मानता।

भारत में भी प्रायः मुसलमान पाकिस्तान का विभाजन नहीं चाहते। कुछ दिन हुए, दिल्ली में उर्दू पत्रकारों की एक सभा हुई थी। यद्यपि सभा के संयोजक 'स्माल ऐण्ड मीडियम न्यूज पेपर फेडरेशन' थी, परन्तु यह एक सरकारी आयोजन ही माना जाता है। यह सभा तीन दिन तक होती रही और सभा का उद्देश्य यह बताया गया कि उर्दू समाचार-पत्रों को देश की विचारधारा के अनुकूल किया जाए। इस सभा की कार्यवाही पढ़ने से न केवल यह पता चला कि उर्दू के अधिकांश मुख्य-मुख्य समाचार-पत्र पश्चिमी पाकिस्तान के विचार को पसन्द करते हैं और मुजीबुर्रहमान को पाकिस्तान का गद्दार मानते हैं, वरन् वह भारत सरकार के बंगला देश के विषय में प्रचार को भी पसन्द नहीं करते।

हम यहाँ मुजीबुर्रहमान के कार्य और भावों के विषय में कुछ नहीं लिख रहे हैं। हमारा तो इतना कहना है कि जहाँ इन्दिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री सत्तर लाख से अधिक हिन्दुओं के बंगला देश से निकाले जाने और लाखों के मार डाले जाने पर भी हिन्दुओं को सम्मति दे रही हैं कि इस विषय को साम्प्रदायिक न बनाया जाये वहाँ दुनिया को तो छोड़ो, भारत के भी मुसलमानों को वह यह सीख नहीं दे सकीं कि वे इस्लाम के नाम पर एक विदेशीय सरकार का पक्ष न लें।

ये वही मुसलमान हैं अथवा मुसलमानों की सन्तान हैं जिन्होंने सन् १९४६ में पाकिस्तान के लिये मत दिया था। और फिर हिन्दुओं को पाकिस्तान से निकालने का यह प्रथम अवसर ही नहीं। यह पिछले २४ वर्ष में तीसरी बार है। एक बार सन् १९५० में, फिर सन् १९५१ में और अब सन् १९७१ में। हमारा अपनी सरकार से यही प्रश्न है कि यह क्रम कभी समाप्त भी होगा अथवा नहीं ? हिन्दुओं को विदेशों में जूते पड़ने कभी बन्द भी होंगे अथवा नहीं ?

यह एक उचित प्रश्न ही है कि आखिर हमें हिन्दुओं से ही इतनी सहानुभूति क्यों है ? देश में अन्य लोग भी तो बसते हैं। इसका उत्तर हमारे पास नहीं है। हम भारत की वर्तमान परिस्थिति देख लज्जा से सिर झुका लेते हैं।

एक समय था कि वर्तमान प्रधानमंत्री के पिता भी यही उपदेश दिया करते थे कि वह भी तो हिन्दू हैं और उनके काल में ही दो बार पूर्वी बंगाल से हिन्दू निकाले गये थे। उन महापुरुष के पिता पण्डित मोतीलाल नेहरू बंगाली हिन्दुओं को, देश के लिये हाथ में गीता ले फाँसी पर लटकते देख, उनको साम्प्रदायिक कहते थे और अब उसी बाबा की पोती और उसी पिता की पुत्री भी हमें यही कहती है कि साम्प्रदायिकता से बचो। इनके राज्य में सत्तर लाख के लगभग हिन्दू पाकिस्तान से बेघर किये गए हैं और लाखों की संख्या में वहीं मार डाले गये हैं। ठीक संख्या तो भगवान जाने कभी पता चलेगी अथवा नहीं।

हमें लज्जा इस कारण लगती है कि मुसलमान तो मुसलमान की मुसलमान के नाते सहायता करते हैं, परन्तु हिन्दू को किसी हिन्दू से हिन्दू के नाते सहानुभूति प्रकट करनी भी ठीक नहीं मानी जाती। यह क्यों ? यही लज्जा का प्रश्न है। पण्डित मोतीलाल हिन्दुओं के नेता थे, पण्डित जवाहरलाल हिन्दुओं के नेता थे और श्रीमती इन्दिरा भी हिन्दुओं के बहुमत से वोट लेकर प्रधानमंत्री बनी हैं। उनके दल में भी अधिकांश हिन्दू ही हैं।

जबसे कांग्रेस का नेता गांधी और नेहरू परिवार हुआ है, तबसे ही हिन्दुओं को हिन्दुओं की रक्षा के लिये कहना पाप हो गया है। मोपला बलवों के समय भी यही हुआ था : कांग्रेस के नेता हिन्दुओं को कहते थे कि इसे साम्प्रदायिकता की बात न बनायें।

हिन्दू के नाम पर कोई बात कहना और हिन्दुओं की रक्षा में अपनी आवाज उठाना साम्प्रदायिकता नहीं है। साम्प्रदायिकता तो तब है जब हिन्दुओं के लिये पाकिस्तान में अथवा हिन्दुस्तान में किसी प्रकार की रियायत माँगी जाए। एक समुदाय जिसकी अपनी मान्यताओं के कारण विरोध और निन्दा की जाती है, उस समुदाय की रक्षा करना साम्प्रदायिकता नहीं हो सकती।

प्रश्न यह है कि क्या इतनी बड़ी संख्या में बंगला देश से हिन्दुओं का निकाल दिया जाना और साथ आने वाले मुसलमानों का पाँच प्रतिशत से भी कम होना यह प्रकट नहीं करता कि जिस किसी ने भी उनको वहाँ से निकालने का आयोजन

किया है, वह साम्प्रदायिकता के विचार से किया है ?

परन्तु आज हमारे सम्मुख समस्या यह नहीं कि बंगाल में क्या हुआ है ? वहाँ हमारी सहानुभूति न तो मुजीबुर्रहमान से है न याहिया खाँ से। हमारी रुचि इस समय इस बात में भी नहीं कि पूर्वी बंगाल पाकिस्तान का हिस्सा रहता है अथवा नहीं ? हमारे विचार का विषय तो यह है कि कहीं यह विश्व भर के अहिन्दुओं के उस षड्यन्त्र का एक भाग मात्र ही तो नहीं जिसके द्वारा पहले तो भारत के मुसलमानों को भड़काकर पाकिस्तान बनवाया, तदनन्तर पाकिस्तान और भारत के परस्पर के विवादों में पाकिस्तान का पक्ष लिया और अब पाकिस्तान से हिन्दुओं को निःशेष करने में सहायक हो रहे हैं ?

हमारे तथाकथित नेता मानवता के नाम पर, न्याय के नाम पर, प्रजातन्त्र के नाम पर और विश्व भर में युद्ध छिड़ जाने के नाम पर दुहाई देते हैं और किसी के कान पर जूँ तक रेंगती ही नहीं।

हम यह देख रहे हैं कि इंगलैण्ड और अमरीका के कुछ वे लोग जो सत्ताहीन हो चुके हैं, पाकिस्तान के जोरो-जुल्म की भर्त्सना कर रहे हैं। परन्तु जब सत्तारूढ़ थे अथवा होंगे तब क्या होगा ? तब उनकी सहानुभूति किसके साथ होगी ? यह भी विचारणीय है।

हमारे सामने समस्या यह है कि दुनिया भर की शक्तियाँ हिन्दुओं को तथा हिन्दुत्व को मिटा देने पर तुली हुई हैं। ऐसी अवस्था में क्या हम भी नेहरू परिवार और उनके पिछ-लग्गुओं का कहा मानकर हिन्दू और हिन्दुत्व की रक्षा के उपाय विचार न करें ?

कठिनाई यह है कि हिन्दुत्व और हिन्दू की रक्षा का विचार करते हुए इनके विपरीत षड्यन्त्रकारियों का नाम लेना पड़ जाता है और उनके हथकण्डों से अपने को बचाने की बात कहनी पड़ती है।

इस दृष्टिकोण से ही हम पूर्वी बंगाल से निकाले गये विस्थापितों के प्रश्न पर विचार करते हैं। उनमें नब्बे प्रतिशत से भी अधिक हिन्दू हैं तो यह विचार हिन्दुओं के प्रश्न पर ही होगा। उनकी रक्षा में यदि दस प्रतिशत मुसलमानों का भी भला हो जाता है तो हमें उसपर शोक नहीं होगा। ऐसा संसार में होता ही है। मुख्य प्रश्न उन लोगों का ही है जिनकी संख्या अधिक है।

यह कहा जा सकता है कि उनको हिन्दू कहने से क्या लाभ ? जब वह नब्बे प्रतिशत हैं तो जो कुछ लाभ सबको होगा, उनमें हिन्दुओं को भी होगा।

हम इससे सहमत नहीं। विस्थापित वापिस चले भी जायें तब भी हिन्दुओं की समस्या सुलझेगी नहीं। उस देश में हिन्दुओं के साथ होने वाला यह पहला अत्याचार नहीं है। पिछले पच्चीस वर्ष में यह तीसरी बार हो रहा है। इस कारण विस्थापितों को वापिस जाना है तब भी वहाँ हिन्दुओं के साथ हिन्दू के नाते समानता और न्याय का व्यवहार होगा अथवा नहीं, यह विचारणीय है और जो कुछ

भी राजनीतिक समाधान वर्तमान पूर्वी बंगाल का होगा, उसमें इस समस्या का आना अत्यावश्यक प्रश्न है।

हमारा इतिहास का ज्ञान हमें यह बताता है कि ये विस्थापित वापिस नहीं जा रहे हैं। क्यों? इसलिये कि इनको वापिस भेजने के लिए जो बात होनी आवश्यक है, वह यहाँ विद्यमान नहीं है।

भारत का पाकिस्तान के साथ यह पहला आमना-सामना नहीं। यहां इस लेख में उन सब विवादों के विषय में लिखने की आवश्यकता नहीं जिनमें हमें पाकिस्तान के हाथों पराजित होना पड़ा है। यहां हम इतना कह दें तो पर्याप्त होगा कि स्वतन्त्र भारत के इतिहास के पन्ने भारत की लज्जायुक्त पराजयों से काले हो रहे हैं। कोई एक भी बात तो बतायी नहीं जा सकती जिसमें हम पाकिस्तान को अपना दृष्टिकोण समझा और मनवा सके हों। ऐसा क्यों है' यह तो कांग्रेसी ही बतायेंगे। स्पष्टीकरण उनको ही देना चाहिए। चौबीस-पच्चीस वर्षों में उन्होंने कब और कहाँ पाकिस्तान को भारत के हितों की परवाह करने के लिए राजी किया है?

हम तो एक बात जानते हैं कि काँग्रेस की आधार-शिला ही मिथ्या दृष्टि पर आधारित है। अतः इसमें सम्मिलित होने वाले भी मिथ्यावादी और भीरु हैं। उनका पूर्ण प्रयास इस बात में रहता है कि किस प्रकार उनकी गद्दियाँ बनी रहें?

इस विचार और परम्परा के लोगों के हाथ में भारत का राज्य रहते हुए भारत में हिन्दू सुरक्षित नहीं हैं और यहाँ बहुसंख्या में हिन्दुओं के होते हुए भी भारत सुरक्षित नहीं है।

अतः पूर्वी बंगाल के विस्थापितों का प्रश्न वहाँ के हिन्दुओं का प्रश्न है। वहाँ से आये मुसलमानों के हम विरुद्ध नहीं। ये लोग वापिस नहीं जायेंगे। कारण यह कि भारत सरकार पाकिस्तान से कोई भी बात मनवाने का सामर्थ्य नहीं रखती। हमारी समाजवादी सरकार एक दुर्बल और भीरु सरकार है। कदाचित् भीरुता दुर्बलता की पुत्री ही है। किसी मनुष्य की शक्ति में उसके शरीर, उसके सम्बन्धी, उसके मित्र, उसका आचार-विचार और उसके धर्म-कर्म सहायक होते हैं। भला वर्तमान सरकार के पास इन बातों में कौनसी श्रेष्ठ बात है जिसमें यह अपने को शक्तिशाली कह सकती है?

सैनिक बल की बात तो हम जानते नहीं। संसद में मंत्रियों के वक्तव्यों से यह प्रतीत होता है कि भारत शक्तिशाली है परन्तु नेहरू और मेनन के सन् १९६ के चीनी आक्रमण से पहले के वक्तव्य भी तो ऐसे ही थे। हम आशा कर सकते हैं कि इस बार यह सरकार जनता को धोखा नहीं दे रही होगी। इस पर भी हम इसे सबल सरकार नहीं मान सकते। इस सरकार ने भारत

में एक रोग के कीटाणु पाल रखे हैं। वह रोग है व्यक्तिगत और जातिगत स्वार्थ। यहाँ पाँच करोड़ से अधिक ऐसे मुसलमान रहते हैं जो पाकिस्तान से वर्तमान विवाद में पाकिस्तान की ओर प्रतीत होते हैं। यहाँ तमिलनाडु के शासक हैं, बंगला के शासक हैं, पंजाब के अकाली हैं और अन्य भी अनेक हैं जिनके अपने-अपने हित हैं और भारत के हित उनकी दृष्टि में नहीं।

ऐसी स्थिति में भारत सरकार पाकिस्तान से युद्ध करने में सबल प्रतीत नहीं होती।

संसार में भारत का सम्बन्धी और मित्र कोई नहीं। इस दृष्टि से भी सरकार दुर्बल है। सरकार के आचार-विचार भी कुछ ठीक नहीं हैं। हम विश्व में उनके मित्र हैं जिन्होंने कभी भी न मित्रता निभाई है और न ही अहसान माना है। रूस और अरब देशों से हम घी-शक्कर हैं और ये हमारी सहायता नहीं कर रहे। वर्तमान सरकार के रबात कान्फ्रेंस में जाकर अपमानित होने पर भी मुसलमान जगत् हमारे दृष्टिकोण को समझ नहीं सका। हमारी सरकार के धर्म-कर्म भी परमात्मा का ही नाम है। भगवान भी इसकी रक्षा में रुचि रखता प्रतीत नहीं हो रहा है।

वस्तुस्थिति यह है कि भारत सरकार पाकिस्तान से युद्ध करने में सक्षम नहीं और विस्थापितों को विशेषरूप में हिन्दू विस्थापितों को हम उनके घर में वापिस नहीं भेज सकते।

हमारे विचार में सब प्रकार की भावुकता पूर्ण और बुद्धि विहीनता की बातें बन्द कर यह विचार करना चाहिए कि हमारी सरकार का रोग क्या है और किस प्रकार उसको दूर किया जा सकता है?

इस देश में अस्सी प्रतिशत हिन्दू रहते हैं अतः यह देश हिन्दू देश है। इसका यह अर्थ नहीं कि इसमें अहिन्दू नहीं रहते। वे भी रहते हैं, परन्तु देश हिन्दू है और हिन्दुओं की रक्षा की प्रथम जिम्मेदारी इस देश की सरकार की है।

कोई भी देश दुर्बल सैनिक स्थिति में अपना अस्तित्व नहीं रख सकता। इस कारण इस देश की आज की सर्वप्रथम आवश्यकता है शस्त्रास्त्र में हमारी सेना की स्थिति भूमण्डल के उन्नत देशों के समान होनी चाहिए।

भूमण्डल का कोई भी राज्य मित्र और सहयोगियों के बिना जी नहीं सकता। इस कारण भूमण्डल के अधिक से अधिक देशों से हमारे सामाजिक, आर्थिक और सैनिक गठजोड़ होने चाहियें।

देश विद्वानों और क्षत्रियों के बलबूते पर स्वतन्त्र रह सकते हैं। परन्तु भारत की विद्वद् परिषद् कहाँ है और उसके क्या अधिकार हैं, यह भी जानने की बात है। यहाँ के सुरक्षामंत्री कोई भूतपूर्व सेनाध्यक्ष क्यों नहीं हो सकते?

प्रश्न उत्पन्न होता है कि हमारे मन्त्रिमण्डल में ऐसे कितने हैं जिन्होंने किसी युद्ध के कभी दर्शन भी किये हैं उनमें भाग लेना तो दूर की बात है ?

जब शक्ति केन्द्रित होती है तो उसकी क्षमता बढ़ जाती है। विकेन्द्रित शक्ति परस्पर विघटित ही रहती है।

हिन्दुओं से हमारा अनुरोध है कि पहले वे शक्तिशाली बनें, तब दूसरों से अपनी बात मनवाने की आशा करें। अन्यथा समाचार-पत्र और सभा-समाजों में गिड़गिड़ाने से क्या लाभ ?

सरकार शेख अब्दुल्ला पर कितना खर्च करती है ?

बात २६ मार्च १९६८ की है। लोकसभा में शेख अब्दुल्ला पर बहस चल रही थी। इसी दरम्यान, शेख पर किये गये सरकारी खर्चे का ब्यौरा रखते हुए तत्कालीन गृहमंत्री श्री चव्हाण ने बताया कि मई १९६५ तथा जनवरी १९६८ के बीच के ३३ महीनों में सरकार ने शेख पर कुल २ लाख ६८ हजार रुपये खर्च किये। खर्च के प्रमुख मुद्दे निम्न थे : भोजन, नाश्ता आदि—४८,८६५ रु०, बीमारी, दवा दारू—११,७३७; अखबार, साबुन, मंजन, कपड़ों की धुलाई और डाक खर्च—६,९९०; नये कपड़े—३५२१; बिजली—२३,५५९; रिश्तेदार और कुछ अन्य नजदीकियो का आना-जाना (मार्ग-व्यय सहित)—२०,५९७; टैक्सी भाड़ा—२,३७६; आने-जाने में अन्य—९५८; कार का रख रखाव—७,९४०; टेलीफोन—५,९१८; उनसे संबद्ध कर्मचारियों का वेतन तथा यात्रा-भत्ता आदि—२१,१५३; मकान किराया—२०,४०५; पानी—२१०; साइकिल—४३१; कोटला लेन स्थित मकान की मरम्मत तथा नया निर्माण—४४,१४९; रखरखाव भत्ता प्रतिमाह—१,५०० तथा फर्नीचर और अन्य घरेलू चीजें—३९,३२४ रुपये।

खर्चे का उक्त ब्योरा सदन-पटल पर रखते हुए श्री चव्हाण ने बताया कि शेख की स्थिति को देखते हुए उन पर विशेष बर्ताव किया गया है। इतना खर्च अन्य किसी गिरफ्तार या नजरबंद भारतीय नेता के साथ नहीं किया गया।

—बाल कवि बैरागी

यह गहरी उदासीनता

हमारी आंखें : बुझती ज्योति

समय के प्रवाह ने हमें कहां से कहां पहुंचा दिया। स्वराज्य मिला, पर हमने परतंत्रता का पल्ला नहीं छोड़ा, आत्मा हनन की राह पर बढ़ते हमारे चरण किस मंजिल पर ले जाकर पटकेंगे हमें यह कौन जानता है ? किसे ज्ञात है कि हमारी आखें, हमारा भविष्य अपनी आखों से क्या देख रहा है ? कहीं सब कुछबुझ तो नहीं जाएगा ? जलते प्रश्न पर चुभता लेख प्रसिद्ध लेखक और कवि की लेखनी से प्रस्तुत है। —संपादक

एक बार मुझ पर और मेरी पत्नी पर यह भार आया था कि हम लोग अपने जिले के एक प्रसिद्ध स्वातंत्र्य सैनिक की युवा पुत्री के लिए लड़का देखें।

लड़के वालों के आने पर मैं समझ नहीं पाया कि बात कहां से और कैसे शुरू की जावे। उधर लड़के का भाई और मामा परेशान कि किसी ओर से बात का सिलसिला ही शुरू नहीं हो रहा है। वातावरण में एक चुप्पी और घुटन थी। तभी मैंने देखा कि महिलाओं में कुछ खुसुर पुसुर शुरू हो गई है। शायद वे बतियाने लगीं थीं। लड़के के पिता ज्यादा बूढ़े नहीं, पर रिटायर्ड जिन्दगी गुजार रहे हैं। लड़के का बड़ा भाई हैदराबाद में कहीं नौकर है और छुट्टियों में 'राजू' और राजू की मां को लेकर अपने परिवार में आया है। मुझे कुछ नहीं सूझा तो मैंने 'राजू' को पुकारा। बस पुकारने भर की देर थी, 'राजू' खुल गया।

बीस मिनिट में 'राजू' मेरा पक्का दोस्त बन गया। उसकी बातचीत और

उत्तरों ने सबको मुग्ध कर लिया। मैंने महसूस किया कि 'राजू' की मां, पिता, चाचा, दादा और सभी परिजन 'राजू' से अपने आप को गौरवान्वित समझते हैं। बूढ़े दादा ने कहा—"साहब ! राजू बड़ा नटखट है और चलते रास्ते लोगों से दोस्ती कर लेना इसका विशेष गुण है ! 'राजू' ने दोनों समूहों के बीच आना जाना शुरू कर दिया और मेरी पत्नी और मेरे बेटों से भी वह तत्काल घुल-मिल गया।

समय काटने के लिए और बच्चा कहीं ऊब न जाये, इसलिये मैंने 'राजू' से कुछ विशेष सवाल पूछने शुरू किये। चार बरस के 'राजू' ने कुछ सवालों के उत्तर ठीक-ठीक अंग्रेजी में दिये और कुछ के आसान हिन्दी में। तोतली बोली में जब 'राजू' अपनी बालसुलभ अल्हड़ता से उत्तर देता था तब मेरा कवि मन निहाल हो उठता था। मैंने पूछा—'बेटे' ? तुम्हारा नाम क्या है ?'

'माई नेम इज 'राजू' जैन-एक्चुअली आई एम राजीव जैन, बट मम्मा एन्ड पापा काल मी 'राजू'- -स्वीट 'राजू'—आई एम आनली 'राजू' यू आलसो काल मी 'राजू' काल अंकल-स्वीट 'राजू' थैंक यू ! (मेरा नाम राजू जैन है। वास्तव में मेरा नाम राजीव जैन है पर मां और पिताजी मुझे 'राजू'—प्यारे 'राजू' पुकारते हैं। मैं केवल 'राजू' हूँ। आप भी मुझे 'राजू' ही कहिये। कहिये न चाचा, प्यारे 'राजू'। धन्यवाद !)

मैं तन्मय हो गया। मैंने दूसरा सवाल किया—तुम कहाँ पढ़ते हो। उत्तर था मैं लिटिल फ्लावर स्कूल में पढ़ता हूं। क्या पढ़ते हो ?—बस पढ़ता हूँ।

मैंने लड़के के पिता से इस स्कूल का परिचय पूछा तो मुझे बताया गया कि यह एक पब्लिक स्कूल है और बढ़िया स्तर की पढ़ाई वहाँ होती है।

'तुम्हें भाई साहब पढ़ाते है या बहिन जी ?'

'हमें टीचर पढ़ाती है। अंकल तुम इतना भी नहीं जानते। हाऊ फनी यू आर !'

हम सब हंसने लगे। मैंने कहा—'यार राजू ! तुम पक्के शैतान हो।'

'पापा ! मैं नाटी हूं। शैतान नहीं हूं। है न ?' राजू ने अपने पिता से पूछा और मेरी गोद से उछल कर वह अपनी मां के पास भाग गया। उधर शायद 'लड़की' देखी-परखी जा रही थी, सो एक ही मिनिट में 'राजू' वापस मेरे घुटनों में आकर फंस गया। उसने मेरा कालर पकड़ा, मेरा गाल थपथपाया और करीब-करीब मेरी नाक पर मुंह लगा कर मुझ से पूछा 'अंकल ! आर यू ए मिनिस्टर ? व्हाट इज ए मिनिस्टर। शो मी।' (चाचा ! क्या तुम मंत्री हो ? मंत्री क्या होता है। मुझे बताओ'।)

मैंने उसके दादा से निवेदन किया कि वे राजू को इसका उत्तर दे देने की कृपा करें। दादा ने राजू को समझा दिया कि वे उसे घर पर सब बता देंगे। तभी मेरा 'मनोवैज्ञानिक' और कवि जाग पड़ा। मैंने हाल की दीवारों पर नजर

दौड़ाई और विशाल तैल चित्रों में मेरी नजर सरदार पटेल के चित्र पर अटक गई। मैंने राजू का मुँह फोटो की तरफ किया और पूछा—

'बेटे! इस आदमी को जानते हो? बताओ यह कौन है?'

राजू ने इस चित्र को आँख गड़ा कर देखा और हवा में हाथ लहरा कर कहा, 'कोई बड़ा आदमी है।' राजू के दादा, पिता, लड़का (चाचा) और कुछ दूर बैठी माँ और बड़ी चाची सब मेरे सवालों से आकर्षित हुए। उन्हें लगा कि मैं शायद 'राजू' की परीक्षा ले रहा हूँ। लड़का फेल हो जाये, सो 'राजू' के दादा ने कुछ समझाना चाहा। मैंने उनसे प्रार्थना की कि यह हमारा निजी मामला है, उसमें दखल न दें। बात मजाक में घुल कर फिर शुरू हो गई। 'अच्छा बेटे! बताओ वह उधर वाली तस्वीर किस की है?' इस बार मैंने लालबहादुर शास्त्री की तस्वीर की ओर इशारा किया।

'आई डोण्ट नो (मैं नहीं जानता) कोई बड़ा आदमी होगा।'

मुझे लगा बड़ी तस्वीर को लड़का 'बड़े आदमी' की तस्वीर मानता है।

डा० राधाकृष्णन की तस्वीर पर 'राजू' का ध्यान आकर्षित करते हुए मैंने पूछा, राजू! इसे तो तुम पहिचानते ही हो। बताओ, यह कौन है?'

'देखते नहीं हो अंकल! यह तो पगड़ी वाला है। तुम्हीं बताओ न यह कौन है?'—राजू बोला।

अब तक 'राजू' के परिजनों के चेहरे पीले पड़ने लग गये थे। जो लड़का लड़की देखने आया था, वह बुझा-बुझा जा रहा था। मेरी दिलचस्पी 'राजू' में गहरी हो गई। जवाहरलाल नेहरू की तस्वीर पर मैंने उंगली उठाकर राजू से कहा—'देखो दोस्त! यह तस्वीर तुम्हारे स्कूल में भी लगी है, बताओ यह कौन आदमी है?' शायद बिजली की रोशनी उस तस्वीर पर ऐसे कोण से पड़ रही थी कि 'राजू' उस जगह से उस फोटो को देख नहीं पा रहा था। फ्रेम दिखाई दे रहा था। उसने मुझे झकझोर कर किलकारी मारते हुए कहा—'दैट्स आनलीफ्रेम अंकल! यू आर लूजिंग योर आईज।' (वह केवल फ्रेम है, चाचा! तुम अपनी आँखों का इलाज कराओ)।

एक ठहाका सारे हाल में गूँज गया। 'राजू' हंसते-हंसते दोहरा हो रहा था।

राजू के बाप ने दीवार पर अगला चित्र देखा। महात्मा गांधी का आदम कद आइल पेंटिंग। उसकी सांस में सांस आई कि लड़का अब की बार ठीक-ठीक उत्तर दे देगा। यहीं सब गड़बड़ हो गई। मैंने संकेत करके पूछा—'बोलो राजू! यह किस की तस्वीर है।' सारे हाल में सन्नाटा खिंच गया। राजू ने सर से पांव तक फोटो को देखा। दो तीन बार। और छूटते ही पटाखा फोड़ा—'आई नों (मैं जानता हूं) यह एक बेवकूफ आदमी है। ठीक है न अंकल!'

सुनते ही मेरा पी. ए. और बैरा हाल के बाहर हो गये। लड़के, लड़के का भाई, बूढ़े दादा, मां, चाची और सबके चेहरे देखने के काबिल हो गये। 'राजू'

एक पल को चुप हुआ और फिर मुझसे लिपट गया। 'दादा' के गले में कांटे अटक गये। वे कुछ बोलना चाहते थे, मैंने टोक दिया—'राजू' को प्यार करते हुए कहा—'हाँ बेटा ! यह आदमी इस देश और शताब्दी का सबसे बड़ा 'बेवकूफ' था। थेंक यू 'राजू' !'

लगे हाथ मैंने राजू को इन्दिरा जी की तस्वीर दिखाई और पूछा, 'बेटा ! पहिचानो यह कौन औरत है ?'

राजू ने एक पल भी विराम नहीं लगाया और चट से उत्तर दिया—'एक दीवानी औरत है।'

मेरी आँखों से आँसू निकल आये। मैंने 'राजू' को बार-बार चूमा। 'हां बेटा ! यह वाकई 'दीवानी' औरत है। इसकी दीवानगी तुम्हें, तुम्हारे बाप, तुम्हारे बाप के बाप और तुम्हारे बच्चों तक को मुबारक हो।'

'राजू' के दादा, मां, बाप, चाची और लड़के (चाचा) की हालत कही नहीं जा सकती थी। दादा ने इतना ही कहा—बच्चा है साहब ! आप इसकी बात का बुरा मत मानना।'

मैंने आनन फानन राजू को वहाँ से उठाया और अपनी गाड़ी में बैठाकर पास ही हिन्दी साहित्य समिति के कार्यालय की राह पकड़ी। 'राजू' ने मुझे पूरा सहयोग दिया। उसने वहीं रात पौने ग्यारह बजे मुझ से चाय मंगवा कर पी। ग्यारह बजे मैं वापस उसे रैंजीडेंसी ले आया और बच्चा अपने परिवार में जा बैठा।

ऐसे करोड़ों 'राजू' इस देश में हमारे राष्ट्र पुरुषों, संस्कृति, इतिहास और अतीत से योजना-बद्ध तरीके से काटे जा रहे हैं। वस्तुतः वे अपने भविष्य से काटे जा रहे हैं। 'राजू' का स्कूल, उसका पाठ्यक्रम, उसकी टीचर, हमें सबको बदलना होगा। उसके मां-बाप की मनोवृत्ति 'राजू' से उनका शैक्षणिक और संस्कारगत अलगाव सब कुछ बदलना होगा। उन संस्थाओं को बदलना होगा जो देश में ऐसे 'राजू' ढाल रही हैं। यदि नहीं, तो लोग फिर सरकारें को बदल डालेंगे। पीढ़ियों को भटकाया जा सकता है, धोखा नहीं दिया जा सकता। स्कूल चाहे जिसका हो, उसमें भारतीयता है या नहीं, यह हमें देखना ही होगा।

वास्तव में उस दिन मैंने 'राजू' की नहीं, 'राजू' ने मेरी परीक्षा ली, और मैं उस परीक्षा में 'फेल' हो गया।

पता नहीं उस लड़के-लड़की ने एक दूसरे को पसन्द किया या नहीं पर मुझे स्वयं से नफरत हो आई। हम अपनी पीढ़ियों के प्रति कितने उदासीन हैं ?

जब-जब यह घटना मुझे याद आती है, मैं रोमाञ्चित होकर अश्रुमय हो जाता हूँ। 'राजू' ने सच कहा था: 'अंकल ! यू आर लूजिंग योर आईज।' (चाचा ! तुम अपनी आँखों का इलाज कराओ)। बार-बार मुझे रुलाई आती

है। मैं भरपूर आवाज से कहता हूँ—नहीं बेटा 'राजू'! नहीं—हमारी आँखें तो तुम हो, इस देश के बच्चे हमारी ज्योति हैं। हमें अपना इलाज कराना है, जरूर, पर तुम्हारे इलाज का क्या मतलब।

दूध मत लजाना....

ऋषियों की संतान हो तुम
मत दूध लजाना माता का।

हृषीकेश जिस भू पर जन्में जहाँ कृष्ण ने खेल किया,
गौतम बुद्ध बने संन्यासी राज पाट का त्याग किया;
आज उसी भारत का वासी क्यों फिरता पथभ्रष्ठ हुआ?
दुः शासन बन रहा प्रेरणा धर्म आज क्यों लुप्त हुआ?

इसी देश में प्रथम बार ही स्वर गूंजा था गीता का।
ऋषियों की संतान हो तुम मत दूध लजाना माता का॥

बना शराबी यौवन भटके गली-गली बाजारों में,
राजनीति की चर्चा होती होटल और मदिरालय में;
नारी का विज्ञापन होता पोस्टर और दीवालों में,
युवक समाज बंधा फिरता है अभिनेत्री के बालों में;

नहीं मेनका या रंभा का यह पुण्य देश है सीता का।
ऋषियों की संतान हो तुम मत दूध लजाना माता का॥

राजनीति बदनाम हो रही भ्रष्टाचारी पनप रहे,
स्वार्थ परायण नेता बन कर भौतिकता को तड़प रहे;
सम्प्रदाय और जातिवाद में जननायक हैं उलझ रहे,
देश द्रोह को प्रश्रय दे रहें राष्ट्रभक्ति से मुकर रहे;

महापुरुषों का जन्मस्थल यह आदि गुरु मानवता का।
ऋषियों की सन्तान हो तुम मत दूध लजाना माता का॥

—दुर्गाचरण

—ब्रह्मदत्त भारती

काश, कि हमारी देखने और समझने
की शक्ति जाग सकती !

बंगला देश हिन्दू और हमारा शासन

बंगला देश में निराश्रय और निर्दोष स्त्री, पुरुष, और बच्चों का रक्त पानी के समान बहते हुऐ देख कर हिन्दुओं के ठण्डे खून में भी कुछ उबाल आया दीखता है। यह उबाल कितना समय रहेगा यह कहना सम्भव नहीं किन्तु यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि जिस शोर और कोलाहल का प्रदर्शन हिन्दुस्तान के हिन्दुओं ने किया हैं वह बासी कढ़ी में उबाल से कुछ अधिक महत्त्व नहीं रखता। कहते हैं, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है परन्तु हिन्दू तो केवल एक भावुक जानवर ही बन कर रह गया है !

बंगला देश में जो कुछ भी हुआ और जो नर संहार पाकिस्तान की सेनाओं ने किया वह पाकिस्तान का आन्तरिक विषय है या नहीं इस से हिन्दुस्तान के हिन्दुओं का विशेष सरोकार नहीं। नरसंहार का हिन्दुओं और हिन्दुस्तान पर राजनैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और आर्थिक दुष्प्रभाव पड़ने वाला है वह अवश्य ही हिन्दुओं का अपना एक ऐसा आन्तरिक विषय है जिस पर पूर्ण विचार करना उनका जन्म सिद्ध अधिकार है जिसे कोई भी नहीं छीन सकता। यदि हिन्दू इस स्थिति में भी करवट लेकर सचेत नहीं होता तो उसका और हिन्दुस्तान का भविष्य घोर निराशाजनक हुए बिना नहीं रह सकेगा।

हिन्दुस्तान में रहने वाले ६५ प्रतिशत से भी अधिक लोग किसी न किसी रूप में हिन्दू धर्म ही के अनुयायी हैं। इसी कारण उनके विचार और कर्म विशेषतः हिन्दुस्तान देश के ही माने जायेंगे। हिन्दुओं ने सबसे बड़ी भूल जो इस समय की उसका एक मात्र कारण है उनका वह अन्धविश्वास जिसके अन्तर्गत सदा यह मानते आये हैं कि इंगलैण्ड और अमरीका हिन्दुस्तान के मित्र हैं और कि ये दोनों देश समाजवाद और मानवता के हितों की रक्षा में

सादा लीन रहे हैं। हर व्यक्ति से कभी न कभी भूल होती ही है परन्तु केवल मूर्ख ही एक भूल को बार-बार करता है। हिन्दुओं ने भी ऐसा ही किया है और इसी कारण आज उन्हें इसका बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ रहा है।

इंगलैण्ड के राजनैतिक और ईसाई तत्त्वों ने सदा हिन्दुओं और उनके हिन्दुत्व और उसकी आड़ में हिन्दुस्तान को न केवल हानि पहुँचाने की चेष्टा की है अपितु इन सब को नष्ट करने के योजनाबद्ध प्रयत्न भी किये हैं। बंगला देश में हो रहे संघर्ष को लेकर जो वाद-विवाद इंग्लैण्ड के हाउस आफ कामन्स में इस वर्ष १४ मई को हुआ उसमें भाग लेते हुए एक सदस्य, मि० बिग्स डेवीसन (Mr. Biggs Davison) ने किसी भी हिचकिचाहट से दूर रहकर कहा कि हिन्दू धर्म जिसका हिन्दुस्तान में बोल बाला है मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है परन्तु इसलाम मनुष्यों को एक साथ भ्रातृभाव से रहना सिखाता है ("Hinduism which flourished in India divided man while Islam was a unifying religion.)

यहबिग्स महोदय इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य हैं और पाकिस्तान सरकार के अधिकारी रहे हैं। इनका साथ दो और सदस्यों ने भी दिया। इन्होंने, मि० बैनेट और मि० टामसन (Mr. Fred Bennet and Mr. Richard Thompson) ने यह लज्जाहीन घोषणा की कि बंगला देश में जो भी हो रहा है अथवा हुआ है उस सब की जिम्मेदारी शेख मुजीब पर ही है। उन्होंने इस मांग पर विशेष जोर दिया कि इंग्लैण्ड की सरकार की ओर से पाकिस्तान को और अधिक सहायता दी जानी चाहिए ताकि वह जल्दी अपना कार्य पूरा कर सके (In their speeches these three blamed Sheikh Mujibur Rehman for the present tragedy ... all of them urged that aid be increased to Pakistan so that President Yahya khan could go ahead with the task of rehabilitation).

हिन्दुस्तान के कितने ही समाचार पत्रों ने हाउस आफ कामन्स में हुए वाद-विवाद के इस पक्ष को इस डर से प्रकाशित भी नहीं किया कि कहीं ऐसा न हो कि इंगलैण्ड का भारत के प्रति मित्रता का भाण्डा ही फूट जाये।

अन्धे को आखें देना शायद सम्भव हो परन्तु जो देखकर भी न देखे उसे उस गड्ढ़े से बचाना जिस में वह गिरने जा रहा हो सम्भव नहीं। यही दशा आज हिन्दुस्तान और उसमें रहने वाले ६५ प्रतिशत से अधिक हिन्दुओं की भी है। हिन्दू धर्म के विरुद्ध मई १९७१ में ही किसी ने विष उगला हो, ऐसा नहीं है। अपनी पुस्तक (१९११) इंग्लैण्ड का भविष्य (The Future of England) में जार्ज पील (Hon. George peel) ने यह भली भाँति स्पष्ट कर दिया था कि हिन्दू उनके शत्रु और मुसलमान उनके मित्र हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २०३, २०५ और २२३ पर लिखा है कि संसार भर में अपनी शक्ति को बलवान् बनाने के लिए हिन्दुस्तान को जीतना इंग्लैण्ड के लिए अति आवश्यक

है और इस के लिए यह जरूरी है कि हिन्दुस्तान को ईसाई बनाया जाये, इंगलैण्ड केवल एक राष्ट्र नहीं है अपितु यह ईसाई जगत् का एक खण्ड भी है। ("And if he (England) gains India, he has gained the leadership of the world......that condition is the adoption by India of Christianity and all that it implies......England is not only a nation to hereself she is also a part of Christiandom") केवल आखों वाले अन्धे हिन्दू ही यह नहीं देख पायेंगे कि हिन्दू और उसके हिन्दुस्तान से ईसाई इंगलैण्ड को न केवल कोई लगाव ही नहीं अपितु पूर्णतया शत्रुता भी है।

इग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों को इसलाम से कितना प्रेम है इसका नंगा रूप हमें जार्ज पील की पुस्तक के पृष्ठ १७४ पर देखने को मिलता है। वहां यह कट्टर पंथी ईसाई राजनीतिज्ञ लिखते हैं—

If we can be friends with our 70,000,000 of Mohemedan Asiatics these can whisper in our favour from Eastern Bengal to Lucknow, from Lucknow across the Indus, until thair goodwill journeys to Cairo and the heart of Africa.

कि यदि हम, हिन्दुस्तान के सात करोड़ मुसलमानों को अपना मित्र बना सकें तो ये लोग पूर्वी बंगाल (बंगला देश) से लखनऊ तक और लखनऊ से सिन्ध तक हमारे प्रति विश्वास और सहानुभूति का राग अलापते हुए हमारी प्रतिष्ठा के हित में अपनी आवाज को काहिरा (मिश्र) और अफरीका के घर-घर तक पहुँचा देंगे। क्या इस पर भी किसी हिन्दू को यह विश्वास हो सकता है कि इंग्लैण्ड और अमरीका पाकिस्तान को अधिक सहायता न देकर इस्लाम को संसार के इस भाग में दुर्बल बनाने की घोर भूल करेंगे?

इंगलैण्ड के राजनैतिक और मजहबी तत्वों ने सदा हिन्दू धर्म और इसके अनुयायियों का अपमान और अनादर कर उन्हें हानि पहुँचाने का भरसक प्रयत्न किया है। लार्ड मैकाले (Lord Macaulay) ने ९ मार्च १८४३ को हाउस आफ कामन्स मे भाषण देते हुए कहा था कि हिन्दुओं और मुसलमान के झगड़ों में कोई भाग न ले परन्तु यदि किसी कारण ऐसा करना ही पड़े तो निस्न्देह हमारी सरकार इसलाम का ही साथ देगी—

The duty of our Government is to take no part in the disputes between Mohemedans and the idolators (meaning Hindus) But, if ever our Government does take part, there cannot be a doubt that Mohemedanism is entitled to the preference.")

अमरीका से प्रकाशित होने वाले क्रिश्चन साइन्स मौनीटर (Christian Science Monitor) ने अपने ४ जून १९७१ के अंक में अपने संपादकीय में लिखते हुए राय दी है कि—

(the USA and Britain cannot afford to alienate a friendly country such as Pakistan occupying a vital strategic position on the periphery of Asia.)

अमरीका और इंग्लैण्ड हितों को हानि पहुँचाये बिना यह सोचा भी नहीं जा सकता कि वे पाकिस्तान जैसे मित्र देश को सहायता देना बन्द कर दें। राजनैतिक दृष्टिकोण से एशिया में पाकिस्तान की कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण स्थिति है। ईसाई मत के इस मुख पत्र ने यह सब कह कर दो बातें खूब स्पष्ट कर दी हैं! ईसाईमत का विश्वव्यापी भ्रातृभाव (Universal Brotherhood of man) का ढिंडोरा एक बहुत बड़ा पाखण्डऔर धोका है और कि ईसाइयत को धर्म से अधिक अपनी राजनैतिक सत्ता बनाये रखने की चिन्ता कहीं अधिक खाये जा रही है।

बंगला देश में हो रही क्रूरता, नर संहार और मुक्ति संघर्ष में हिन्दुस्तान को कुछ और चेतावनी भी मिलती है। इस नाटक के आरम्भ में ही भारत के नेताओं ने लम्बी-लम्बी जीभ निकाल कर लम्बे-लम्बे लक्ष्य जनता के सामने रखने शुरू कर दिये। कुछ गिने-चुने नेताओं ने झट अपना छोटा मुँह खोलकर यह बड़ी मांग कर डाली कि मानव जाति के हित में संसार के बड़े देशों को बंगला देश में शीघ्र ही हस्तक्षेप करना चाहिए! इन्होंने अभी तक यह भी नहीं समझा कि जो नाटक मानवजाति के हितों के नाम पर पिछले ३३ वर्षों से खेला जा रहा है वह नाटक मात्र है। असली लक्ष्य छोटे देशों को और भी दीन और दुबला बनाना है। मानवता आज इन्हीं बड़े देशों के हाथों दम तोड़ रही है। इस हस्तक्षेप की मांग करने वाले नेताओं की समझ में यह साधारण सत्य भी नहीं आया कि केवल हिन्दुस्तान पर बंगला देश में हो रहे युद्ध का दुष्प्रभाव पड़ सकता है। फिर अमरीका और इंगलैण्ड को किस पागल कुत्ते ने काटा है कि वे बंगला देश को राजनैतिक मान्यता देकर भारत के हाथ मजबूत करें। केवल मूर्ख ही किसी के फट्टे में अपना पांव फँसाता है और निश्चय ही अमरीका और इंग्लैण्ड मूर्ख राजनीतिज्ञ (देश) नहीं हैं। एक और बड़ी सीख भी हिन्दुस्तान की हिन्दू जनता को बंगला देश में मिलती है। बीते युग में जब जब आपस की ईर्ष्या अथवा सैनिक दुर्बलता इस देश के राजा को दबा लेती थी तब-तब वह किसी विदेशी राजा को भारत आने अथवा इस देश पर आक्रमण करने का निमन्त्रण देता था। जिन भारतीय नेताओं ने अमरीका, इग्लैण्ड और रूस को बंगला देश के विषय में हस्तक्षेप करने की याचना की है उन्होंने कुछ ऐसा ही किया है—चाहे वर्तमान परिस्थति में इस याचना को कोई भी और रंग देने की चेष्टा क्यों न की जाये। आज बंगला देश का गृह संघर्ष पाकिस्तान का आन्तरिक विषय न होकर हिन्दुस्तान का अपना घरेलू मामला अवश्य बनकर रह गया है। किसी विदेशी शासन को इस

में हस्तक्षेप करने का निमंत्रण देना भारत के अपने आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप का निमंत्रण ही समझा जाना चाहिए।

बंगला देश में हो रहे स्वतंत्रता संघर्ष को सुलझाने हेतु और बंगला देश वासियों की सहायता के हित में भारतीय नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने विश्व का भ्रमण किया। काहिरा में मिश्र के नेताओं ने उनसे बातचीत करना तो एक ओर उनसे मिलना भी उचित नहीं समझा। लंदन में उन्होंने एक वक्तव्य में कहा कि यदि विश्व के बड़े देश बंगला देश की पूर्ण सहायता करके इस समस्या को शीघ्र ही नहीं सुलझाते तो भारत कोई दो टूक निर्णय करने पर विवश हो जायेगा। श्री जयप्रकाश और उनकी पंक्ति के भारतीय नेताओं को इतनी भी समझ नहीं कि यदि हिन्दुस्तान दो-टूक निर्णय लेने की स्थिति में होता तो उनको सहायता के लिए झोली फैला कर भीख माँगने निकलना न पड़ता और न ही हिन्दुस्तान की सरकार को विदेशों को याचना पत्र भेजने पड़ते।

जब किसी देश में उसकी उन्नति की नींव विदेशी भाषा पर रखने की चेष्टा की जाती है तो उस की उन्नति के कितने ही द्वार स्वय ही बन्द हो जाते हैं। सब से बड़ी हानि यह होती है कि उस देश के वासी पढ़े लिखे (literate) होने पर भी अशिक्षित (uneducated) ही रह जाते हैं। ऐसे ही अशिक्षित लोगों से आज हिन्दुस्तान भरा पड़ा है। अशिक्षा के कारण ही जनता आज अन्धकार में है और यह निर्णय नहीं कर पा रही कि इस देश का हित किस ओर है। इस अशिक्षा के कारण ही सरकार उन्हें बार-बार कितनी ही चूहे-बिल्ली और तोता-मैना की कथायें सुना कर सुलाये रखना चाहती है। बंगला देश का सांप हिन्दुस्तान के गले में लिपटा है और न जाने कब तक हिन्दुस्तान को इसे दूध पिला-पिला कर शांत रखना पड़ेगा। इसकी संभावना दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है कि यह सांप उन ही हाथों को काट ले जो इसका पालन-पोषण कर रहे हैं। तब क्या होगा और क्या करना होगा अथवा क्या करना पड़ेगा? इस देश में और इस के बाहर यत्र तत्र सर्वत्र इस देश के वासियों का रक्तपान उसी भाँति होगा जैसा आज बगला देश में हो रहा है। क्या भारत सरकार उस समय भी विदेशों से सहायता की याचना करेगी या अपने बल पर स्वदेश और इस के वासियों की जान, माल, मर्यादा और स्वाभिमान की रक्षा कर सकेगी? आज हर सुशिक्षित हिन्दुस्तानी इस प्रश्न का उत्तर खोजने की चेष्टा में दिखाई पड़ता है।

"ब्रह्मा से लेकर पीछे-पीछे आर्यावर्त्त में बहुत विद्वान् हो गये हैं, उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियनों की ही स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के बिना क्या कहा जाये"। --सत्यार्थ प्रकाश

योग का लक्ष्य

स्वामी योगेश्वरानन्दजी सरस्वती, योग निकेतन, ऋषिकेश से 'जनज्ञान' के विशेष प्रतिनिधि श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार की भेंटवार्ता

मार्च १९७१ में एक मास के लिए श्री स्वामीजी महाराज ने दिल्ली के उपनगर पंजाबीबाग (पश्चिमी) स्थित अपने शिष्य श्री नारायणदासजी के गृह पर एक मास तक योग साधना का शिविर आयोजित किया था।

इसी प्रसंग में हमारे विशेष प्रतिनिधि ने स्वामीजी महाराज से वार्ता में कुछ प्रश्न किए—जो उत्तर मिले, वे सभी के कल्याणार्थ उपस्थित हैं—

सामान्य व्यक्ति के लिए मार्ग

पहला प्रश्न—योग के ऐसे सहज प्रयास कौन से हैं जो एक सामान्य व्यक्ति अपना सकता है ?

उत्तर—पहले योग का अभिप्राय समझ लेना चाहिए। उसके बाद ही साधनों का प्रश्न हल हो सकता है। योग का पहला अर्थ है—परमात्मा के साथ सीधा मेल, उसे जानना और उसके प्रत्यक्ष साक्षात्कार की अनुभूति करना। "योग" का दूसरा अर्थ है, चित्त की एकाग्रता द्वारा समाधि अवस्था प्राप्त करना, पदार्थों का साक्षात् करना। योग का तीसरा अर्थ है, अपने कर्तव्य कर्मों को कुशलता से करना, जिसे, गीता के शब्दों में "कर्मसु कौशलम्" कहा गया है।

जहाँ तक सामान्य व्यक्ति का प्रश्न है, उसे सबसे पूर्व मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए। इसके कई उपाय हैं। सबसे सहज और सरल उपाय है मन को अपने शरीर के किसी अंग पर टिकाना। पहले शरीर के स्थूल अंग पर फिर क्रमशः अंग के किसी स्वस्थ स्थान पर। मन को इस प्रकार

केन्द्रित करने का समय धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिए। योग विद्या के अनुसार दोनों नेत्रों के मध्य माथे पर भृकुटि का बिन्दु ध्यान के लिए सर्वोत्तम माना गया है। यहाँ दीर्घकाल तक चित्त को केन्द्रित करने से अवश्य समाधि की दिशा की ओर सामान्य व्यक्ति भी अग्रसर हो सकता है।

ध्यान कहाँ सुगमता से लगायें ?

अपने शरीर के किसी अंग व भृकुटि को ध्यान का लक्ष्य बनाने के अतिरिक्त दूसरा उपाय सामान्य व्यक्ति के लिए किसी बाह्य वस्तु पर अपनी वृत्तियों को केन्द्रित करने का है। इसमें भी उस पदार्थ की आकृति और रूप को ध्यान बिन्दु बनाते हुए क्रमशः लघु और लघुतर करते जाना है।

इन उपायों का निरन्तर अवलम्बन करने से सामान्य व्यक्ति भी सफलता प्राप्त कर सकता है।

व्यस्त व्यक्ति कितना समय दे ?

दूसरा प्रश्न—आज के व्यस्त जीवन में कम से कम कितना समय साधना के लिए देना पर्याप्त है ?

उत्तर—समय की सीमा बाँधना सम्भव नहीं है। अगर आज का व्यस्त व्यक्ति यह समझ ले कि उसे साधना के मार्ग पर, स्वेच्छा से और अन्तः प्रेरणा से चलना है तो वह स्वयं ही साधना का समय बढ़ाता चला जाएगा। साधक को सबसे पहले इस मार्ग पर चलने के लिए दृढ़ श्रद्धा और विश्वास का प्रचुर संचय करना होगा। तब यदि वह आध घंटे के अभ्यास से भी आरम्भ करेगा, तो, कुछ मास बाद दो घंटे तक भी पहुँच सकता है।

साधना का उद्देश्य क्या है ? शरीर को विश्राम और मन की शान्ति। दिन भर के काम से थका व्यक्ति यदि आध घंटा भी योग आसन पर बैठ जाए तो निश्चय ही जहाँ उसकी थकावट दूर हो जाएगी, वहाँ मन की शान्ति की लहरों में तैरने लगेगा। क्या यह कम लाभ है ?

संयम का जीवन व स्वेच्छाचार

तीसरा प्रश्न—कुछ योगाचार्य कहते हैं कि साधक के लिए किसी प्रकार के आहार-विहार व संयम का वर्जन आवश्यक नहीं है। कुछ आचार्य इस सम्बन्ध में बड़े कड़े नियमों के पालन पर बल देते हैं। आपका क्या मत है ?

उत्तर—आहार-विहार की शुद्धता और इस सम्बन्ध में निर्दिष्ट कड़े नियमों का पालन किये बिना योग मार्ग में सफलता नहीं मिल सकती। जिस समय व्यक्ति यह समझ लेता है कि संयम और वर्जन के मार्ग में किंचित् शिथिलता से कोई विशेष क्षति की संभावना नहीं है, तब इस शिथिलता का आयाम निरन्तर विस्तृत होता जाता है। ऐसा व्यक्ति पहले किसी एक

योगीराज श्री स्वा० योगेश्वरानन्द सरस्वती

इन्द्रिय के विषय भोग में शिथिलता अपनाता है, फिर दूसरी इन्द्रिय के विषय में, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय के कार्य का प्रभाव दूसरी इन्द्रिय पर, स्वभावतः, पड़ता रहता है। अन्ततः तो यह व्यक्ति इस शिथिलता का इतना शिकार हो जाता है कि मार्ग भ्रष्ट हो लड़खड़ा जाता है। संसार में ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने आये हैं, जहाँ बिन्दु मात्र ढील के परिणाम बड़े हानिकारक और अभ्यासी को एकदम पतन के गर्त में फेंक देने वाले निकले हैं।

इसलिए योग मार्ग में यम-नियमों का अत्यन्त सावधानता से पालन किया जाना चाहिए।

चमत्कारों का प्रदर्शन ?

चौथा प्रश्न – क्या आप योग के चमत्कारों पर विश्वास करते हैं ? क्या इन चमत्कारों का सार्वजनिक प्रदर्शन वांछनीय है ?

उत्तर—योगी को कई सिद्धियां प्राप्त होती हैं और ये आत्मिक होती हैं। प्रदर्शन के लिए नहीं होतीं। यदि योगी इन सिद्धियों को जादू व चमत्कार का रूप देकर उनका प्रदर्शन करता है, तो वह निन्दनीय कर्म करता है। इन चमत्कारों व सिद्धियों का सार्वजनिक प्रदर्शन तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति में बाधक हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस प्रकार व्यायाम इत्यादि द्वारा शरीर में अद्‌भुत शक्ति और लचक आ जाती है, वाणी की शक्ति के प्रभाव से वक्ता अपने श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देता है, इसी प्रकार योग साधन से आत्म बल में अकथनीय ओज का प्रादुर्भाव हो जाता है। किसी अध्यापक की योग्यता देख जिस प्रकार छात्र उसकी ओर आकृष्ट होता है, उसी प्रकार योग मार्ग का पथिक भी अपने गुरु के चमत्कार देखने को उत्सुक रहता है। पर गुरु को चमत्कारों द्वारा शिष्य पर अपना प्रभाव पैदा करने के प्रलोभन में नहीं फँसना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन का मार्ग लौकिक मार्ग से सर्वथा भिन्न है। इसमें तनिक-सी त्रुटि भी व्यक्ति को उच्च शिखर से कहीं का कहीं पटक देती है। इस लिए चमत्कारों से प्रभाव पैदा करने का मार्ग सर्वथा त्याज्य है।

योग आसन और साधना

पाँचवाँ प्रश्न—योग आसन के रूप में जिन शारीरिक व्यायामों का आज कल प्रचार हो रहा है और योग-साधना के जिन साधनों को महत्त्व दिया जा रहा है—क्या दोनों का अटूट सम्बन्ध है ? दोनों में से आप किसे अधिक महत्त्व देते हैं ?

उत्तर—आसनों का अभ्यास तो बहुत आवश्यक है। हम भी प्रतिदिन इन्हें करते हैं। योग के आठ अंगों में आसन का भी स्थान है। इसके बाद ही प्राणायाम में सुविधा होती है। आठ अंगों में पिछले तीन अंग धारणा, ध्यान और समाधि तो शीर्षस्थ हैं और कठोर प्रयत्न साध्य हैं। पहले पाँच के अभ्यास से

पिछले तीन को साधक अपने जीवन में क्रियान्वित कर सकता है। इसलिए आसन, प्रायाणाम और साधना—तीनों का प्रयास में अटूट सम्बन्ध है। आसनों से शरीर स्वस्थ और बलवान् होता है और स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा का निवास हो सकता है। आयु और अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार आसन नियमित रूप में प्रतिदिन किये जाने चाहिए।

स्वामीजी की विश्वयात्रा

छठा प्रश्न—आपकी विश्वयात्रा का क्या उद्देश्य है? क्या आप विश्वास करते हैं कि इससे विश्व शान्ति स्थापना में सहायता मिल सकेगी?

उत्तर—निश्चय ही इससे विश्वशान्ति में सहायता मिल सकेगी। मेरी विश्वयात्रा का उद्देश्य यही है। आज पश्चिम भोग से तंग, अशान्त और जर्जर हो चुका है। कटी हुई पतंग के समान कभी एक और कभी दूसरी वस्तु के भोग को आनन्द का साधन समझ उसे पकड़ने में लगा रहता है। पर पानी में बुदबुदे के समान ये वस्तुएं उसे फिर पतनोन्मुख बना रही हैं। योग साधन और आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा ही पश्चिम की जनता का पुनरुद्धार और कल्याण हो सकता है।

स्वामीजी महाराज ने इस प्रसंग में हमारे एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि पश्चिम के देशों में अध्यात्म विद्या और योग मार्ग के जिज्ञासुओं और पथिकों की पर्याप्त संख्या है। उन्हें ठीक मार्ग दर्शन मिलना चाहिए और उनकी विश्व-यात्रा का उद्देश्य यही है।

यात्रा छह चरणों में

३० अप्रैल को दिल्ली से रवाना हुए। उनकी इस सम्पूर्ण यात्रा में उनके शिष्य, श्री स्वामी मुक्तानन्द जो इंग्लैंड में कई वर्ष तक रह शिक्षा प्राप्त हैं—उनके साथ रहेंगे। यात्रा के प्रथम चरण में ईरान, ग्रीस और रोम में ठहरते हुए द्वितीय चरण में स्विट्जरलैंड, फ्रांस और पश्चिम जर्मनी जाएँगे जहाँ प्रत्येक देश में योग कक्षाओं का आयोजन किया गया है। यात्रा के तृतीय चरण में स्वामीजी जर्मनी, हालैंड, बेलजियम और ब्रिटेन जाएँगे। वहां भी प्रत्येक देश में योग कक्षाओं का आयोजन किया गया है।

यूरोप के बाद अमेरिका यात्रा

इस प्रकार यूरोप की यात्रा समाप्त कर विश्व यात्रा का पांचवां अंग अमेरिका से आरम्भ होगा जहां उनका योग प्रशिक्षण का कार्य-क्रम ४ मास का है। इस अमरीकी यात्रा में कनाडा, उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका—इत्यादि सब देश शामिल हैं। लासएंजलिस में एक मास का शिविर लगेगा, इसी प्रकार सानफ्रांसिस्को और सुरिनाम में भी योग शिविर की व्यवस्था की गयी है।

इस यात्रा का छठा और अन्तिम चरण दक्षिण पूर्व एशिया के देश होंगे, जापान, थाईलैंड, मलेशिया, हाँगकांग इत्यादि होंगे।

—पं० रामखेलावन विजयी

विदेश प्रचार

सुरिनाम डचगायना में आर्यसमाज का कार्यक्रम और उसका विस्तार

वैसे तो आर्य समाज का बोलबाला १६२८ में ही हमारे सुरिनाम प्रदेश में हो गया था, लेकिन जब से यहाँ पर श्री मेहता जैमिनि जी एवं सी० एफ० एण्ड्रुज जी १६३० में पधारे उसी समय सारे सुरिनाम में स्थान-स्थान पर श्री पं० रामप्रसाद जी शुक्ल के द्वारा स्थान-स्थान पर प्रचार कराया गया।

पं० रामप्रसाद शुक्ल जी सुरिनाम के लोह पुरुष माने जाते थे, और उन्होंने सबसे पहले ईसाइयों पर हमला किया।

(ईसा धर्म के मानने वाली इस राजधानी की रानी) हालेण्ड की महारानी Mrs. WILHELMINA श्रीमती वेल्हेलमीना विशेष रूप से थी।

और पादरी लोग तो उनके मानों राजगुरु ही थे उनकी धाक जमी हुई थी, सुरिनाम में वस्तुतः उन लोगों के आगे किसी की दाल नहीं गलती थी। लेकिन श्री शुक्लजी ने जब ये देखा कि हमारा कौम के प्रलोभनों के द्वारा लड़के--लड़कियाँ सभी लुटती जा रही हैं, तो ईसाइयों के सब से बड़े BI SHOP बिशप को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा जो ऐसा करने की किसी की भी हिम्मत न थी (उस बिशप का नाम था बिशप FRANS--फ्रान्स) शुक्ल जी से बिशप-फ्रांस शास्त्रार्थ में कई बार परास्त हुए। सुरिनाम के सभी ईसाइयों की आँखों के ये किरकरी बन गये, पर हिम्मत न छोड़ी, और श्री बाबू मास्टर (हनुमान हीरा सिंह) जी को सदा अपना सेक्रेटरी के रूप में रखा। सुरिनाम की जितनी भी स्कूलें थीं, वे सभी की सभी (ईसाइयों की थीं) उन स्कूलों के तोड़ने के श्री शुक्ल जी ने यहाँ के गवर्नर (BAROC VANHEEMSTRA वारोन्फान्हेमस्त्रा) जो उनका परम मित्र था, उन्हीं के सहायता के द्वारा (साम, दाम, दण्ड भेदों) के द्वारा काम लिये, कि ये ईसाई स्कूलें हम

हिन्दू-आर्यों के लिये खतरनाक हैं, क्योंकि इसमें प्रारम्भ में ही ईसाई धर्म की शिक्षा दी जाती है। हम नहीं चाहते हैं कि हमारे बच्चे वहाँ मजहबी शिक्षा पायें। पादरियों ने एक स्वर से कहा कि ऐसा तो अवश्य ही होगा। शुक्ल जी ने हड़ताल किया कि हम सारे हिन्दुस्तानी अपने बच्चों को स्कूल जाने से प्रतिरोध करेंगे कि, जब तक कि सरकारी स्कूलें न बन जायेंगी (वित्त मन्त्री) ने जो विपक्षी दल का था, निर्णय दिया कि खजाने में रुपये नहीं हैं जो (सरकारी स्कूलें बनाई जावें)। सुरिनाम के सभी लोगों को धन्यवाद है; जो क्या सनातन धर्मी, क्या आर्य समाजी, कबीर पन्थी सभी लोगों ने सहयोग दिया है कि सरकारी स्कूल अवश्य बनें।

जब रुपये का सवाल आ गया तो शुक्ल जी ने अपने रुपये सरकार को ऋण के रूप में देकर (सरकारी Openbare School) सर्वत्र बनवा कर ही दम लिया, और सारे देहाती स्कूलें ईसाइयों कि जितनी भी थी अब एक भी न रह गई है उनके रुपये जल्दी वापिस हुए शहर में दो एक शेष हैं जो अंगुलियों पर गिनी जा सकती हैं। श्री पं० राम प्रसाद शुक्ल जी के ही ६००० रुपये के द्वारा खरीदी हुई जमीं पर (आर्य दिवाकर) का मन्दिर, श्री महयानन्द अनाथालय और (सोहन सिंह) नामक एक वृहत् स्कूल तैयार है कि जहाँ हजारों लड़के लड़कियाँ पढ़ती हैं जहाँ अपना दफ़्तर टेलिफोन वगैरह सब है।

अब इसकी तादात ढाई लक्ष की मानी जाती है। इसके अन्तर्गत कई समाजें हैं।

गत वर्ष १९७० में भारत से आये हुए महात्मा आनन्द स्वामीजी के द्वारा आर्य दिवाकर महासभा की ४० वीं जयन्ती मनाई थी कि जिसमें एक सप्ताह तक वेद कथा और वैदिक धर्म का प्रचार बड़े धूम धाम के साथ मनाया गया। इस वेद यज्ञ में देश-विदेश के भी मेहमान आये हुए थे याने निकेरी, डमरारा, ट्रिनिडाट आदि स्थानों से लोग आये हुए थे। भारतीय राजदूत (ट्रिनिडाड स्थित) (प्रोफेसर श्री शंङ्कर आदेश) जी का भी महत्वपूर्ण और ओजस्वी भाषण भी जनता को मुग्ध करता था।

(II) इस बार श्रावणी पर्व-उपाकर्म भी ता० ६-७-८ अगस्त तक तीन दिन यज्ञ आर्य दिवाकर में भारी भीड़ के साथ होता रहा।

(III) और इन्हीं तिथियों में (प्रान्तिक आर्य प्रतिनिधि सभा) पारापाली पातकाम्बानिका में भी भारतीय पण्डित श्रुतिशील शर्मा और श्री कृष्ण जी शर्मा की अध्यक्षता में मनाई गई और परीक्षित छात्रों को प्रमाण पत्र देने की व्यवस्था भी की गई है। इस मन्दिर का जन्म दाता स्व० पं० अमृत प्रसाद जी थे। जो वेस्ट इण्डीस में ऐसा भव्य मन्दिर अभी कहीं भी नहीं है गत वर्ष में इसका उद्घाटन हुआ था।

(IV) आर्य प्रतिनिधि सभा सुरिनाम-ग्राफ़न्स्ट्रीट १०८ पारामारिवो इस

मन्दिर के बनवाने में सर्वस्व व्यय खर्चे जो हुए हैं, वह सब श्री शुक्ल राम प्रसाद जी की धर्म पत्नी श्री महादेवी जी ने ही किए हैं। इसका भारतीय सिक्के के अनुसार चौवन हजार रुपये होते हैं अब इस समय यह मन्दिर पिन्ट याने रंगीन किया जा रहा है और इसी अगस्त में इसमें भी वेद यज्ञ की व्यवस्था की जायेगी। इस मन्दिर की बागडोर इस समय जे० शुकदेव मुंगरा जी के हाथों में है।

आर्य दिवाकर महा सभा सबसे पुरानी और बड़ी सभा है इसके अन्तर्गत निम्न सभाजें हैं—

(१) आर्य समाज हन्सू
(२) आर्य समाज लिफोन्द्रो
(३) आर्य समाज वेल् खदाख्त सेई
(४) आर्य समाज माखेन्ता
(५) कप्तान्वोइती
(६) आर्य समाज हौत्तोइन
(७) आर्य समाज कण्डाल ८॥
(८) आर्य समाज वानिका वेख
(९) आर्य समाज ववाटा
(१०) आर्य समाज मुन्दर वोइती
(११) तूर्तोन्न-लान्
(१२) आर्य समाज
(१३) सोहावन वेख
(१४) आर्य समाज (पोष्ठ खोनेडन्)
(१५) आ०स० कलकत्ता (सरामाका)
(१६) आ० स० हिवलख सोरख
(१७) आ० स० फान्ड्रेस्म लन्पोल्दर (निकेरी)
(१८) आ० स० न्यू निकेरी
(१९) आ० स० हाम्पतन्कूर्ट (निकेरी)
(२०) आ० स० खौत् हेईनार पोल्दर (निकेरी)

(आर्य समाज साँवल कैइक् पोल्दर निकेरी का है जो किसी समाज के सम्पर्क में नहीं है उनके लीडर हैं श्री जीपत, और श्री मनसा राम)।

जैमिनि जी के बाद में सी० एफ० एण्ड्रयुज जी पं० अयोध्याप्रसाद जी ने तो पौराणिकों के गढ़ तोड़ ही डाले थे। बाद को पं० नारायण दत्त जी पं० भेष पति जी पं० ऋषि राम जी पं० राम सहाय जी पं० भास्करानन्द जी पं० श्रुति कान्त जी पं० राम मूर्ति जी पं० आनन्द स्वामी सरस्वती जी आदि बहुत से विद्वान लोग जो यहाँ आ आकर के वैदिक धर्म का प्रचार किये हैं, उन सबों के लिये हम सुरिनाम निवासी हृदय से आभारी हैं।

आज तो मासिक पत्रिका-जनज्ञान ने हमारे इस सुरिनाम देश में हलचल मचा दी है याने क्या आर्यसमाजी, ईसाई, यवन, पौराणिक सभी लोग पढ़ कर इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करतेहैं। और सभी लोगों का हृदय ग्राह्य हो रही है।

मैं तो स्वयं दो कैदखानों में प्रति सप्ताह धार्मिकोपदेश के लिये जाया करता हूँ। प्रति रविवार को सांय ४ बजे (Santo Boma) (सन्तो बोमा) बुधवार को प्रातः न्यू अमस्टडाम भी जेल घर में; कि जहाँ ४६ कैदी भाग लेते हैं। उनमें मुस्लिम भी हैं, और हिन्दी पढ़े हुए हैं हमेशा भाग लेते हैं।

इस पवित्र कार्य के लिए हम आपके आभारी हैं।

चौथी चन्द्र यात्रा के यात्री—बाएं से दाएं— डेविड स्काट, जेम्स इर्विन और अल्फ्रेड वार्डन

●

मनुष्य की चौथी चांद यात्रा

—लज्जारानी

अपोलो-१५ की चन्द्र यात्रा न केवल अन्तरिक्ष में और चन्द्रतल पर बिताये गये समय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, अपितु वैज्ञानिक उपलब्धियों की दृष्टि से भी वह पहले की यात्राओं की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। चन्द्रयात्रियों ने निर्धारित कार्य-क्रम के अनुसार ६७ घण्टे चन्द्रतल पर बिताये। उन्होंने तीन बार अपनी विद्युत् चालित बग्घी में बैठ कर चन्द्रमा का भ्रमण किया और कुल मिला कर ३६ किलोमीटर की दूरी नापी। इस प्रक्रिया में वे २० घण्टे चांद पर

चहलकदमी करते और पृथ्वी पर परीक्षण के लिए लाने को मिट्टी और चट्टानें बटोरते रहे। चन्द्रतल में तीन मीटर गहरा छेद करने का उनका प्रयत्न असफल रहा। सतह इतनी कठोर है कि बरमा उसमें छेद न कर सका।

स्काट और इर्विन जब चन्द्रतल की यात्रा कर रहे थे, तब मुख्य यान के चालक अल्फ्रेड वार्डन अन्तरिक्ष में विहार करते हुए चन्द्रमा की सतह के चित्र ले रहे थे।

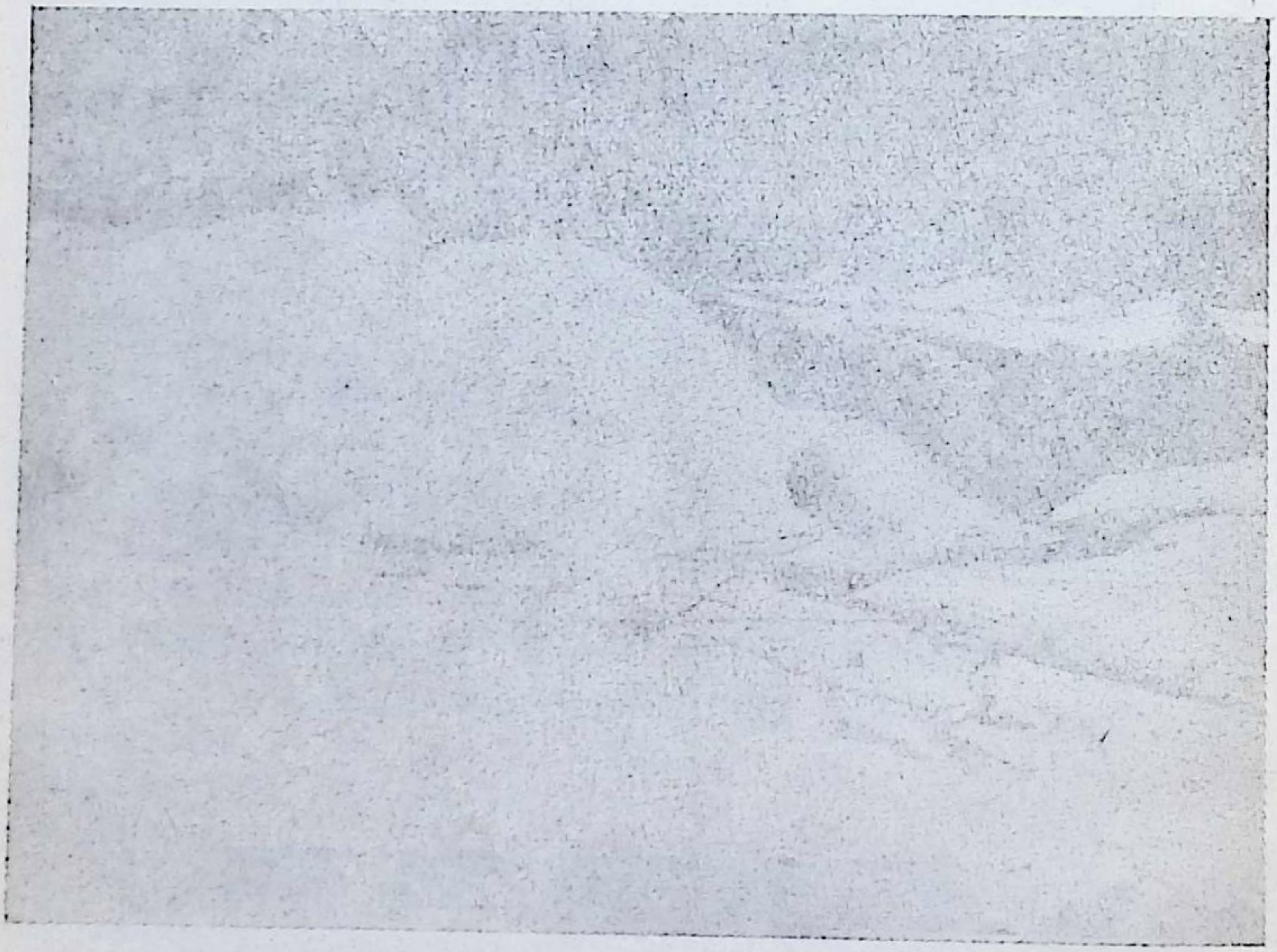

वह स्थान जहां अपोलो-१५ का चन्द्रमा पर
अवतरण हुआ

चांद पर यात्रियों को पहली बार उतारने के लिए अपोलो-११ भेजा गया। स्वर्गीय राष्ट्रपति कैनेडी १९६२ में ही बीड़ा उठा चुके थे कि चाहे कुछ भी हो, चांद पर पड़ने वाले प्रथम पग अमरीकी होने चाहिएं। नौ साल पुराने इस सुदृढ़ संकल्प, तीन लाख टेक्नीशियनों की रात-दिन की मेहनत और २४ अरब डालर व्यय करने का परिणाम २० जुलाई १९६९ को सारे संसार को देखने को मिला। वैज्ञानिक कल्पना से ओत-प्रोत कथा साहित्य उस दिन यथार्थ बन गया। 'सी०

आफ़ ट्रैंक्विलिटी' जानी-पहचानी जगह बन गई। उसके बाद नवम्बर १९६९ में अपोलो-१२ ओशन आफ़ स्टार्म्स में उतरा। अप्रैल १९७० में अपोलो-१३ को जोखिम से बचने के लिए लौट आना पड़ा। इस वर्ष फरवरी में अपोलो-१४ पहाड़ियों के पास उतर कर धरती पर लौट आया। अब तक की सभी उड़ानों के लिए उतरने के जो स्थल निर्धारित किये गये थे, उनमें मुख्यतः यात्रियों की सुरक्षा का ध्यान रखा गया था। ३१ जुलाई को अपोलो-१५ का एक ऐसे स्थान पर उतरना साहस का काम था, जिसके एक ओर लगभग १५ हजार फुट ऊंची 'एपेनाइन' पर्वतमाला और दूसरी ओर ८०० मीटर चौड़ी और ३६० मीटर गहरी चन्द्र-घाटी है। चन्द्र-मध्य रेखा से ७४८ किलो मीटर उत्तर में वह स्थान वैज्ञानिक खोज के लिए सही स्थल है।

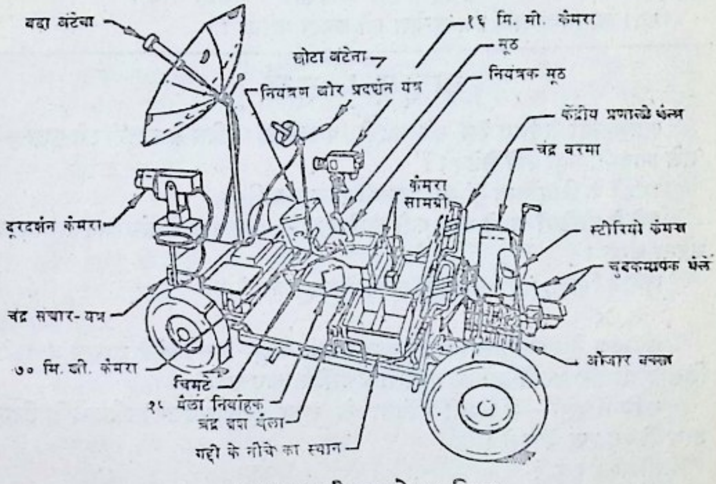

चन्द्र बग्घी का रेखा-चित्र

इस प्रकार अपोलो-१५ की उड़ान केवल प्रतिष्ठा की ख़ातिर नहीं, अपितु ठोस वैज्ञानिक जानकारी के लिए आयोजित की गई। चूँकि इस बार यात्रियों को देर तक और यान से काफ़ी दूर जाकर काम करना था, इसलिए आक्सीजन की मात्रा भी अधिक रखी गई। इस बार उनके कपड़े भी अपेक्षाकृत अधिक आरामदेह थे। इस यात्रा का एक अन्य लाभ यह है कि जिन स्थलों पर यात्री उतर चुके हैं और वैज्ञानिक यन्त्र छोड़ आये हैं उनसे इस नये बिन्दु के साथ बनने वाला त्रिकोण चन्द्रतल पर उल्कापात और ज्वालामुखियों की सक्रियता का समाकलित परिचय देगा। अपोलो-११ के यात्री, जो यन्त्र आदि छोड़ आये

थे, उनमें से तो केवल एक यन्त्र (लेजर किरणों का परावर्त्तक) अब काम कर रहा है, परन्तु अपोलो-१२ और १४ के यात्री जो वैज्ञानिक उपकरण छोड़ आये थे, वे अब भी ठीक काम कर रहे हैं।

जहाँ तक यात्रा का इंजीनियरी पक्ष है, इस बार भी वही सब हुआ, जिस के अब हम आदी हो चुके हैं। शायद चन्द्रमा की भी अब यही नियति है कि कोई आये, कुछ घण्टों की पिकनिक मनाकर लौटे और अपने पीछे यन्त्र, कैमरे, बैटरियाँ, झण्डे आदि छोड़ जाये। स्काट और इर्विन ने भी यही किया। एक ओर वोस्तोक, मर्करी, वोस्खोद, जैमिनी, सोयूज और अपोलो हैं, दूसरी ओर अज्ञान है, अन्याय है, अभाव है। लगभग दो वर्ष पूर्व बरट्रैंड रसल ने लिखा था कि "हमें चाहिए कि हम स्वयं ब्रह्माण्ड की महिमा प्राप्त करें न कि ब्रह्माण्ड को झगड़ा-टंटा मचाने के लिए अपनी असारता में घसीट लायें।"

क्या मानव-समाज इस सन्देश को ग्रहण करेगा?

आइए! हँसें!

आत्महत्या के लिए रेल की पटरी पर लेटे व्यक्ति से राहगीर ने पूछा—'भले आदमी, यहाँ क्यों लेटे हो?'

'मरने के लिए लेटा हूँ' उस आदमी ने जवाब दिया,

'तो ये रोटियाँ अपने साथ क्यों लाये हो?'—राहगीर ने शंका का समाधान करना चाहा।

जवाब मिला, 'हो सकता है, गाड़ी लेट हो जाय'।

× × ×

संपादक ने एक महत्त्वाकांक्षी नवयुवक से कहा—आप कोई कारण बताइये जिसके आधार पर मैं आपकी कविता प्रकाशित कर सकूँ।

कवि ने कहा—मैं अपनी कविता के साथ हमेशा उसको लौटाने के लिए डाक टिकट रख देता हूँ।

तो फिर क्या?

यदि आप कविता छापा करें तो डाक टिकट आपके पास रह जायेंगे।

+ + +

मालिक: 'समझ में नहीं आता कि जब बुद्धि बंट रही थी उस समय तुम कहाँ थे?'

नौकर: 'साहब, मैं तो आपके साथ दौरे पर था'।

× + +

नेता का मित्र: 'आज तो आपने बड़ा अच्छा भाषण किया'।

नेता: 'भाषण तो अच्छा किया लेकिन सुनने वाले सब के सब गधे थे'।

मित्र: 'अच्छा, तो इसीलिए तुम बार-बार उनसे कह रहे थे, 'प्यारे भाइयो'!

स्वतंत्रता संग्राम और आज़ादी के दिन

प्रसिद्ध पत्रकार द्वारा

सनसनीपूर्ण रहस्योद्घाटन

श्री जे० एन० साहनी हमारे देश के एक विख्यात पत्रकार हैं। लगभग ५० वर्ष तक उन्होंने देश की राजनैतिक घटनाओं को समीप से देखा है। पिछले दिनों उनकी पुस्तक "दी लिड आफ़" प्रकाशित हुई जिस से कई नई घटनाएं प्रकाश में आई हैं।

बहुत पहले वह रावलपिण्डी जिला कांग्रेस कमेटी के मन्त्री थे। बाद में वह २६ वर्ष की छोटी उम्र में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक हुए। वह कांग्रेस को अन्दर-बाहर से बहुत अच्छी तरह जानते हैं। राष्ट्रीय नेताओं का जो चरित्र-चित्रण उन्होंने किया है, वह ऐसा नहीं कि हमारे नेता उन पर गर्व कर सकें।

श्री साहनी का विचार है कि यह दुर्भाग्य की बात थी कि जब सत्ता हस्तान्तरण के लिए महत्त्वपूर्ण वार्त्ता चल रही थी, तब कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर मौलाना अबुलकलाम आज़ाद थे। एक बार खान अब्दुल ग़फ्फ़ार खां ने श्री साहनी से कहा कि "हम कांग्रेस के 'जिन्ना' और मुस्लिम लीग के जिन्ना के बीच में फंसे हुए हैं।" श्री साहनी लिखते हैं कि अब्दुल ग़फ्फ़ार खां अकेले व्यक्ति न थे जो मौ० आज़ाद को कांग्रेस का 'जिन्ना' मानते थे। सरदार वल्लभभाई पटेल भी निजी बातचीत में कहा करते थे कि "यदि अबुल कलाम पाकिस्तान चले जायें तो मुझे प्रसन्नता होगी।"

मौ० आज़ाद ने शिक्षा-मन्त्री के रूप में देश को बहुत हानि पहुँचाई। श्री साहनी के शब्दों में "सन् ३१ के आस-पास मौ० आज़ाद, डा० अनसारी और मैं जेल में इकट्ठे थे। मौ० आज़ाद का मत था कि डा० अनसारी एक ऐसे राजनैतिक नेता हैं, जिनकी कोई धार्मिक पृष्ठभूमि नहीं।" दूसरी ओर डा० अनसारी मौ० आज़ाद के बारे में कहते थे कि "वह शुरू से आखिर तक मुल्ला ही मुल्ला हैं। वह रहते हैं दिल्ली में, लेकिन स्वप्न लेते हैं मक्का के।" श्री

साहनी का मत है कि धार्मिक अनुसन्धान और इस्लामी अध्ययन के लिए स्थापित अल अजहर सदृश किसी विश्वविद्यालय के कुलपति पद को तो वह (मौ० आजाद) सुशोभित कर सकते थे, लेकिन वह केन्द्र में शिक्षा मन्त्री बनने के लिए उपयुक्त व्यक्ति न थे। मौ० आज़ाद ने शिक्षा मन्त्रालय में इतने मुस्लिम अधिकारी भर लिये कि सरदार वल्लभभाई पटेल विनोद में कहा करते थे कि "यदि आप छोटा पाकिस्तान देखना चाहते हैं, तो शिक्षा मन्त्रालय में देख लें।"

विद्वान् लेखक ने सरदार पटेल की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनका कहना है कि सरदार पटेल ही थे, जिन्होने निज़ाम हैदराबाद को ठिकाने लगाया लार्ड माउण्टबैटन के विदा होते ही वल्लभभाई पटेल ने गतिरोध की स्थिति पैदा कर दी। सरदार पटेल ने जोर देकर कहा कि रजाकारों और कम्युनिस्टों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए—आवश्यकता पड़ने पर निजाम तक के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए—सेना की सहायता ली जानी चाहिए। सरदार पटेल ने अपने साथियों को चेतावनी दी कि यदि हैदराबाद के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई न की गई, तो कुछ अन्य रियासतें भी विद्रोह कर सकती हैं—यहां तक कि पाकिस्तान से मिल सकती हैं। सरदार पटेल ने देखा कि रक्षा समिति ढिल-मिल है। समिति की एक बैठक में सरदार पटेल ने अपनी फ़ाइलें संभाली और यह कह कर बैठक से बाहर चले गये कि "यदि मैं देश की रक्षा नहीं कर सकता तो मैं अपने पद पर नहीं बना रहना चाहता।" उसी दिन समाचार मिला कि रजाकारों ने दो भिक्षुणियों और अनेक हिन्दू महिलाओं से बलात्कार किया। यह आखिरी तिनका था। नेहरू जी सरदार पटेल के पास गये और कार्रवाई करने को कहा। इससे महाराजा बड़ौदा को भी शिक्षा मिल गई। उन दिनों वह पश्चिमी भारत का सम्राट् बनने के सपने ले रहे थे।

श्री साहनी का यह मत है कि यह हमारा दुर्भाग्य था, जो हमने लार्ड माउंटबैटन को अपना गवर्नर-जनरल रखा। उन्हीं की सलाह पर हमने कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में पेश किया और गान्धी जी ने आग्रह किया कि पाकिस्तान को ५५ करोड़ रु० दे दिया जाये। स्वतन्त्र भारत में किये गये विनाशकारी निर्णयों में ये दो उल्लेखनीय हैं।

श्री साहनी लिखते हैं कि सन् १९३७ में जब कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल बने, तब सादगी के सिद्धान्त की अवहेलना बढ़ गई। चुनाव के फलस्वरूप प्राय: सभी प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल बने। कांग्रेस अध्यक्ष ने दिल्ली में एक संयुक्त बैठक बुलाई, जिसमें मन्त्रियों और नव निर्वाचित सदस्यों ने भाग लिया। जो भी मन्त्री आया, उसके साथ फ़ाइलें, अटैची केस अथवा गुप्त कागजात वाले मुहरबन्द बक्से उठाये चपरासी थे।

लगता था, मानो पुराने वक्तों के नवाब अपने दरबारियों के साथ किसी

शादी में शामिल होने आये हों। नवाबों के साथ आने वाले दरबारियों
में किसी के हाथ में पंखा होता था, किसी के हाथ में हुक्का और किसी के हाथ
में उपर्युक्त अवसर पर लगाने के लिए खुशबू की शीशी।

जब केन्द्र में कांग्रेसी पदों पर नियुक्त हुए, तब भी स्थिति में विशेष सुधार
न हुआ। वेतन तो ५०० रु० ही रहे, लेकिन गृह सचिव मुडी की योजना के
अनुसार इन मन्त्रियों को इतनी सुविधाएं दी गईं कि ये ५००रु० तो जेब खर्च से
लगते थे। अन्तरिम सरकार बनने पर भी सदस्यों को वही सुविधाएं दी गईं।
किसी भी कांग्रेसी अथवा मुस्लिम लीगी नेता ने इन विशिष्ट सुविधाओं को लेने
से इनकार न किया। वेतनों में कोई कमी न की गई। जितना वेतन कार्यकारी
परिषद् के पिछले सदस्यों को मिलता था, उतना ही नये सदस्यों को मिलने
लगा। ग्रैंड विस्ता के समीप कार्यकारी परिषद् के सदस्यों के लिए जो मकान
बनाये गये थे और जिन्हें कभी 'महल' का नाम दिया जाता था, अब इन्हीं के
बारे में कहा जाने लगा कि ये छोटे हैं और सर्वथा अनुपयुक्त हैं।

हे प्रभो हम आपकी ही उपासना करें !

निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्त्ति।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्र देवानाम् असुरत्वम् एकम् ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले ईश्वर, जैसे (ते)
आपकी सृष्टि में (पृथिवी) भूमि (निष्षिध्वरीः) अत्यन्त मंगल करने
वाली (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियों को (बिभर्त्ति) धारण वा
पोषण करती है (उत) और (ते) आपके (आपः) जल (रयिम्)
लक्ष्मी को धारण करते हैं, उसी (देवानाम्) सूर्य आदिकों में (महत्)
सबसे बड़े (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) शत्रुओं के नाश करने वाले को
प्राप्त होकर (ते) आपके (वामभाजः) उत्तम कर्मों के सेवन करने वा श्रेष्ठ
भोग भोगने वाले (सखायः) मित्र हम लोग (स्याम) होवें।

भावार्थः—हे जगदीश्वर, जिन आपने हम लोगों के सुख के लिए सृष्टि में
अनेक प्रकार की ओषधियां और जल रचे, उन आपके हम लोग उपासना
करने वाले होवें और आपको छोड़ के दूसरे की उपासना कभी न करें।

(ऋषि-भाष्य से)

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

सामने के पृष्ठ का चित्र उस महापुरुष तिलक का है जिसके बताए मार्ग पर यदि देश चला होता तो आज विदेशी सभ्यता के प्रभाव से हम दीन-हीन न होते। वे भारतीय संस्कृति के उपासक और प्रसिद्ध विद्वान् होने के साथ-साथ राजनीति के धुरंधर पंडित थे।

ब्रिटिश सरकार उनकी सिंह गर्जना से थर्राती थी। वे अपने समय में देश के सबसे बड़े नेता थे और "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" यह पाठ भी उन्होंने ही भारत के घर-घर में प्रचारित किया था। विदेशी शासन, संस्कृति और सभ्यता को समाप्त करने के लिए उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन की आहुति दी थी।

स्वतंत्र भारत को आज पूर्ण स्वतंत्रता के लिए तिलक जैसे मार्ग दर्शक की आवश्यकता है। हम उनके जीवन और आदेशों से प्रेरणा लेकर भारत में राम-राज्य का स्वप्न साकार कर सकते हैं

—संपादक

जय बाल गंगाधर तिलक,
जय वीर भारत केसरी !
जय लोक मान्य वदान्य महिमा,
जो भुवन भर में भरी।
पंडित प्रवर नव युग प्रवर्तक,
राष्ट्र के आधार जय !
जय पुण्य पारावार। अनुपम,
ज्ञान के भंडार जय।

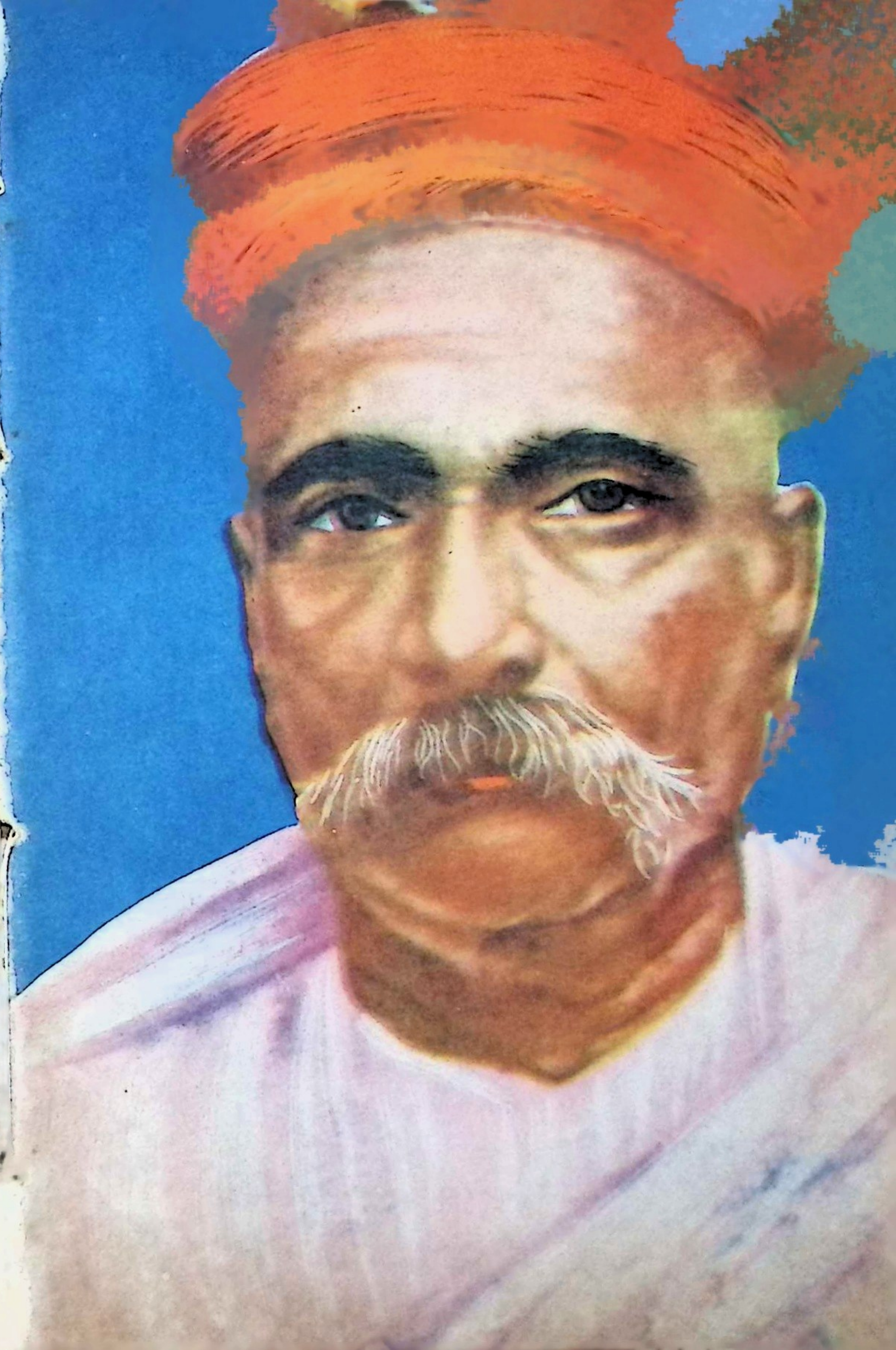

पद्मिनी, एम० ए०

आर्य समाज और उसकी मान्यताएं

आर्य समाज सत्य सनातन वैदिक धर्म का पोषक है। आर्य समाज एक सुधारवादी आन्दोलन हैं जिसके प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती थे। काल चक्र की विषम गति से वैदिक धर्म में अनेक अन्ध विश्वासों ने स्थान प्राप्त कर लिया था। स्वामी दयानन्द ने इनका निराकरण किया और वैदिक धर्म का सत्य स्वरूप समस्त संसार के समक्ष समुपस्थित किया। वैदिक धर्म का मूलस्वर "ईश्वर" है अतः उसकी प्रथम प्रबल मान्यता है कि 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है'। ईश्वर ही समस्त ज्ञान और विज्ञान का प्रेरक है।

आर्य समाज भगवान् के स्वरूप को निराकार मानता है। वह मूर्ति पूजा अथवा भगवान् के अवतार होने में विश्वास नहीं करता। उसका विश्वास है कि 'ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता हैं'। उस सर्वव्यापक के अनेक नाम संभव हैं जो उसके विशेष गुणों के बोधक हैं। जैसा कि ऋग्वेद की साक्षी है:—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्नि यम्म मातिरमंवानमाहुः

भारतवर्ष का इतिहास साक्षी है जब मुहम्मद गजनवी ने सोमनाथ के मंदिर पर आक्रमण किया, तब पुजारी ने कहा कि डरने की आवश्यकता नहीं सोमनाथ गजनवी को परास्त करेंगे। गजनवी ने मन्दिर की ईंट से ईंट बजा दी। शिवलिंग को चूर-चूर कर दिया और देश की जनता पर अभूतपूर्व अत्याचार किये। माताओं और बहिनों को लाखों की संख्या में दास बना कर ले गया। उसकी लूट पाट, हत्या और पापाचार की कहानियाँ विश्व के इतिहास में बेजोड़

हैं। इस लिए वैदिक धर्म कहता है कि ईश्वर वह सर्वव्यापक सत्ता है जो हमारे पाप पुण्यों का फल प्रदान करता है जिससे प्रेरणा पा कर मानव जीवन को ज्योतिर्मय कर सकता है। ध्यान, धारणा और समाधि द्वारा उस महादेव का अन्तःकरण में दर्शन होता है।

वेद वैदिक धर्म का मौलिक ग्रन्थ है। विश्व के पुस्तकालय में सर्व प्रथम पुस्तक है जिसमें सब सत्य विद्याओं का सूत्र विद्यमान है। इन वैदिक शिक्षाओं से मानव जीवन को उन्नति के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया जा सकता है। इसलिए आर्यसमाज कहता है कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है,

वैदिक धर्म का दूसरा स्तम्भ जीव है जिसे आत्मा भी कहा जाता है यह आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र तथा फल भोगने में परतंत्र है। यह अजर और अमर है। कर्मों के अनुसार नाना योनियों में विचरण करता है। जब यह सत्य को ग्रहण करता है और धर्मानुसार कार्य करता है तो जीवन में आनन्द प्राप्त करता है। आत्मा की उन्नति शारीरिक स्वास्थ्य के बिना नहीं हो सकती। रोगी प्रभु भक्ति का आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए आत्मिक उन्नति के लिए स्वस्थ शरीर और मन का होना आवश्यक है। इसी लिए कहा गया है।

'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्' अर्थात् स्वस्थ शरीर ही धर्म का साधन है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए वेदों में अनेक स्थानों पर प्रार्थना की गई हैः—

'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
स्थिरैरंगै स्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।

वैदिक धर्म का तीसरा स्तम्भ प्रकृति है जिससे समस्त संसार की सृष्टि होती है। इस प्रकृति के मूल तत्त्व कभी नष्ट नहीं होते। वे सदा सूक्ष्म रूप में विद्यमान होते हैं। आधुनिक भाषा में इसे ऐटम या अणु कहा जाता है।

ईश्वर जीव और प्रकृति इन तीन अजर और अमर स्तम्भों पर वैदिक धर्म स्थित है। इसी को वैदिक भाषा में त्रित्ववाद कहते हैं। यह तो हुआ वैदिक धर्म का आध्यात्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण।

वैदिक धर्म का वैयक्तिक दृष्टिकोण भी अति सुन्दर है। वह जीवन की सौ वर्ष की आयु को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चार भागों में विभक्त करता है। ब्रह्मचर्य ज्ञानार्जन काल है। अर्जित ज्ञान को क्रियात्मक

रूप गृहस्थ आश्रम में दिया जाता है। गृहस्थ आश्रम में अर्जित क्रियात्मक ज्ञान को वानप्रस्थी विश्व के कल्याण के लिए लेखन, भाषण आदि द्वारा संसार के कोने २ में फैलाता है। इस लिए संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। इसके लिए प्रत्येक आर्य सबसे प्रीति पूर्वक और धर्मानुसार व्यवहार करता है तथा अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करता है। वह अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहता, अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझता है।

जीवन के चौथे चरण में संसार के समस्त माया-मोह से दूर हो कर वैदिक व्यक्ति ईश्वर से समीपता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यह उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य होता है। वैदिक भाषा में इसे मोक्ष कहा जाता है।

वैदिक धर्म की सामाजिक व्यवस्था भी अद्वितीय है। समस्त मानव समाज को उसके पुरुषार्थ और गुण-कर्म के अनुसार चार भागों में विभक्त कर दिया गया है। इन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामों से जाना जाता है। ब्राह्मण त्यागी, तपस्वी और ज्ञान का धनी होता है। क्षत्रिय राष्ट्र की रक्षा में जीवन अर्पण करता है। वैश्य व्यापार द्वारा राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था का दायित्व वहन करता है। चौथा शूद्र जो उपर्युक्त कार्य नहीं कर सकता, वह सेवा वृत्ति द्वारा राष्ट्र की रक्षा करता है।

वैदिक भाषा में इसे वर्ण कहते हैं क्यों कि राष्ट्र की प्रत्येक इकाई को अधिकार है कि स्वेच्छा से इन चारों वर्णों में से अपने पुरुषार्थ द्वारा किसी एक वर्ण को स्वीकार करे। इन चारों वर्णों में ऊँच नीच की भावना नहीं है राष्ट्र के लिए प्रत्येक समान उपयोगी है। एक के दुर्बल या कर्तव्य विमुख होने पर राष्ट्र नौका डगमगा जाती है। यह है वैदिक समाजवाद, जहाँ मानव के द्वारा मानव के शोषण का मार्ग अवरुद्ध है। विश्व की यह सुन्दरतम सामाजिक व्यवस्था है। इस सम्बन्ध में वेद की अन्तः साक्षी है:—

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृत।
ऊरूतदस्य यद वैश्यः पद्भ्या ँ शूद्रोऽजायत' ॥

इन वैयक्तिक, सामाजिक और आर्थिक स्तम्भों पर वैदिक धर्म आधारित है। अनेक सामाजिक व्यवस्थाएं विश्व में उदय हुई। उनका स्थान आज केवल संग्रहालयों में है। परन्तु लगभग दो अरब वर्ष पूर्व सृष्टि के आरम्भ में प्रादुर्भूत वैदिक व्यवस्था आज भी अजर और अमर है जो अशान्त और पीड़ित विश्व

के लिए शान्ति के सोपान का कार्य कर सकती है। इसके अतिरिक्त पीड़ित मानवता के निस्तार का दूसरा मार्ग नहीं है, जैसा वेद कहता है:—

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं, आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्
तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

**ओ३म् बलं धेहि तनूषो नो बलमिन्द्रालुत्सुनः
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ।।**(ऋ० ३।५३।१८)

हे बल पराक्रमशालिन् ! बलों के भण्डार ! आपकी कृपा से आपसे जुड़ा होने के नाते मुझ में महान् बल है, अद्भुत शक्ति तथा सामर्थ्य है। परन्तु भगवन् ! मैं अपने को निर्बल और दुर्बल समझता हूँ। रोग, शोक, मोह आदि समय-समय पर मुझे आ दबाते हैं। बलधारी प्रभो ! आप बलों के भण्डार हैं, शक्ति के स्रोत हैं, आपके वरद सम्पर्क को मैं पहचानूं। नाथ ! कृपा करो मेरे आपसे विमुख अतः बलहीन इस शरीर को भी सबल बना दो।

भगवन् ! मेरे मुख में वाक् शक्ति हो, नासिका में घ्राण शक्ति, आँखों में दर्शन शक्ति, कानों में श्रवण शक्ति, भुजाओं में महान् बल, जाँघों में वेग और पैरों में दृढ़ स्थिर शक्ति हो। सब अंग त्रुटि रहित हों। सम्पूर्ण देह निर्दोष हो। बलदाता ओजोमय जीवन के लिए बल दो, निर्बल का तो जीवन ही व्यर्थ है, भारस्वरूप है। नाथ ! बल दो। बल भण्डार तू ही बलदाता है।

ओ३म् प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये। (अ० १९।६२।१)

हे सर्वज्ञानमय ! भक्त वत्सल ! परमपिता परमात्मन् ! हमें भी विद्वानों का प्यारा बना दो। हे विक्रमशालिन् रुद्र ! हमें राजन्य जनों का प्रिय बना दो। हे सर्व हितकारिन् ! हमें हृदय तथा मस्तिष्क की ऐसी विशेषतायें प्रदान करो कि हम अपनी न्यायप्रियता से वैश्य वर्ग में प्रिय हो जाएँ। हे सबके मित्र ! हमें सेवक वर्ग का भी प्रिय बना दो।

वेद के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पं० श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर द्वारा लिखित अन्तिम लेख

गायत्री

गायत्री मंत्र की उपासना अति प्राचीन काल से—ऋषिकाल से—इस देश में चल रही है। वह आज भी शुरु है। प्रत्येक आर्य संध्या करने के समय गायत्री मंत्र का जप करता ही है। जपका अर्थ है **जपः तदर्थभावनम्** (योग-दर्शन) अर्थात् उस मंत्रके अर्थ की भावनासे अपना मन ओत प्रोत भर देना है। अपने मनमें वही भाव रहे ऐसा करना है। संध्या करने वाले आर्य मंत्रके अर्थकी भावना से अपना मन भर देते हैं या नहीं यह वैयक्तिक प्रश्न है। परन्तु संध्या करने के समय यह गायत्री मंत्र कई बार उच्चारा जाता है। बोला जाता है, इतनी बात तो सत्य है। संध्याके अन्य मंत्र केवल एक ही वार बोले जाते हैं, परन्तु यह गायत्री मंत्र अनेक वार बोला जाता है। यह इसके महत्त्वकी सूचक बात है।

इस गायत्री मंत्र को गुरुमंत्र भी कहते हैं, जिस समय द्विजका उपनयन होता है, उस समय उपनयन करनेवाला गुरु उस उपनीत शिष्यको इस मंत्रका उपदेश देता है। गुरुका दिया हुआ यह मंत्र है, इसलिए इस मंत्र को गुरुमंत्र भी कहते हैं। गुरुमंत्रके अमुक अर्थ हैं। गुरु से प्राप्त मंत्र, गुरुका दिया मंत्र, महत्त्वपूर्ण मंत्र, पूज्य मंत्र, सबसे उत्तम मंत्र, श्रेष्ठ मंत्र, प्रिय व हितकारी मंत्र, शक्तिशाली मंत्र, अमूल्य मंत्र, महा मूल्यवान् मंत्र, विश्वके गुरुका—प्रभुका वर्णन करनेवाला मंत्र, दिव्य प्रकाश देने वाला मंत्र। इन अर्थोंको देखनेसे इस गुरुमंत्रके महत्त्वका

पता लग सकता है। इस मंत्रमें ऐसा महत्त्व है, इसीलिए इसका महत्त्व अनादि-काल से सब लोग मानते आए हैं।

उपनयन संस्कार में गुरु इसी मंत्रका उपदेश शिष्यको करता है और जिसको इस गुरुमंत्र का उपदेश हुआ है, उसने किसी भी दूसरे मंत्रको किसी अन्य गुरुसे लेना नहीं चाहिए, ऐसा विचार अनादिकाल से अपने भारत देशमें प्रसिद्ध है क्योंकि यह एक ही "गुरुमंत्र" है अर्थात् श्रेष्ठ मंत्र है। श्रेष्ठ मंत्रका उपदेश जिसको हो चुका है; वह दूसरे मंत्र क्यों ले? इसलिए इस गुरुमंत्रका उपदेश जिसने लिया है, उसको दूसरे मंत्रका उपदेश नहीं लेना चाहिए।

यद्यपि इस समय कई द्विज इस "गुरुमंत्र" का उपदेश देने पर भी अन्यान्य मंत्रोंका उपदेश यवनादिकोंसे लेते हैं, पर वैसा करना अयोग्य है। क्योंकि इस एक ही मंत्रसे सब कार्य हो सकते हैं कि जो अन्यान्य मंत्रों से होने की संभावना है। अर्थात् इस गुरु मंत्र की योग्यता सचमुच असाधारण है।

इस गुरुमंत्र का जप करने के समय प्रथम ओंकार बोलते हैं, पश्चात् तीन या सात व्याहृतियां बोलते हैं और पश्चात् गायत्री मंत्र बोलते हैं और अन्तमें फिर ओंकार बोलते हैं अर्थात् ओंकार के संपुर में गायत्रीमंत्र बोला या जपा जाता है। वह इस तरह है—

गुरुमंत्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ऋ. ३।६२।१०; वा यजुः ३।३५; २२।९; ३०।२ :३६।३ साम. १४६२ तैत्ति. सं. १।५।६।४; ४।१।११।१ त. आ. १।११।२।

इस तरह प्रणवयुक्त व्याहृति तीन के समेत इस गुरुमंत्रका जप करने की पद्धति सर्वत्र प्रचलित है। कई सप्त व्याहृतियों का भी प्रथम उच्चारण करते हैं। कई प्रत्येक मंत्रपाद के साथ ओंकारपूर्वक सप्त व्याहृतियों का जप करते हैं, परन्तु हमने जो पाठ ऊपर दिया है, वही पाठ और वैसा जप करने की पद्धति विशेष रीति से प्रचलित है। इसलिए उपासना करनेवालों को ऐसा ही पाठ स्वीकारना उचित है।

मंत्रके जपका अर्थ ही मंत्रके अर्थकी भावना से अपने मनको भर देना, अपने मनको तन्मय करना, मनमें दूसरा कोई विचार न करना और मंत्र का भाव ही मनमें रखना है। इसलिए इस गुरुमंत्रका जप करनेवालों की सुविधा

के लिए यहां ओंकार व्याहृतियां और मंत्र का आशय संक्षेप से बताते हैं। जो पाठक जप करना चाहते हैं, वे इस भावको मन में धारण करें और इस भावसे जो अपना कर्तव्य ध्यान में आता है, उसको करके अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

ओंकार

इस गुरुमंत्रके साथ प्रथम ओंकार है, यह ओ३म्, ओं अथवा ओरूम् ऐसा लिखा जाता है। प्लुत ओंकारका उच्चारण करना चाहिए। इस कारण "ओरूम्" यह अधिक स्पष्ट है। ओ३म् में भी प्लुत उच्चारण होता है। इसलिए इसमें मुख्य उच्चारण की बात प्लुत उच्चारण की है। यह ध्यान में धारण करनी चाहिए। "ओ-ओ-ओ-म्" ऐसा तीन मात्राओं का इसका उच्चारण है।

ओं में "अ-उ-म्" ये तीन अक्षर हैं और तीन वेदों का यह सार है, ऐसा माना जाता है।

(१) 'अ" कार ऋग्वेद के प्रारंभ का अक्षर है। जैसा "अग्निमीले-पुरोहितम्" का प्रारंभ "अ" कारसे हुआ है। यही ऋग्वेदका प्रारंभ है।

(२) "उ" कार यजुर्वेदके मध्य से लिया है। यजुर्वेदका मध्य २०वें अध्यायके अन्तसे होता है। यजुर्वेदमें ४० अध्याय हैं। उसका आधा भाग २०वें अध्यायके अन्तमें समाप्त होता है। इस अध्यायके अन्तिम पद ये हैं—"**जुषन्तां सोम्यं मधु**"। यहां अन्तमें "उकार" है। यही "उ" कार ओंकार का मध्य अक्षर है।

(३) सामवेद का अन्त "**स्वस्त नो बृहस्पतिर्दधातु ओ३म्**" से हुआ है। इस तरह सामवेद का अन्त "म" कारसे हुआ है।

इस तरह तीन वेदसे "अ-उ-म्" ये तीन अक्षर साररूप से लेकर ओंकार बना है। इसकारण इसको तीनों वेदों का सार या सत्त्व कहते हैं। तीनों वेदों का अध्ययन करनेकी सूचना इस रीतिसे इस ओंकारसे मिलती है।

ओंकार में "अ-उ-म्" के पश्चात् अर्धमात्राका ऊचारण है वह अथर्ववेद का द्योतक है। चारवेद मिलकर एक ही "पवित्र वेद" बनता है। "वेदका पढ़ना, सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है।" इस नियमके साथ वेदके उपदेश को अपने आचरणमें लाना भी अत्यन्त आवश्यक है। यह सब कर्तव्य ओंकार बता रहा है। ओंकारमें स्थित "अ-उ-म् का अर्थ माण्डूक्य उपनिषद्में

दिया गया है। वह साधक को अवश्य ध्यानमें धारण करने योग्य है।

'अ' कार

अकार, उकार और मकारको **जाग्रति—स्वप्न--सुषुप्ति** का दर्शन मानकर बताया है कि यह मानवी जीवन का सूचक ओंकार है। मनुष्य का जीवन इन तीन अवस्थाओं में व्यतीत होता है। मनुष्य कुछ घंटे जागता है, कुछ समय उसका स्वप्नमें जाता है और शेष सब समय उसका सुषुप्ति में जाता है। इस तरह मनुष्य का जीवन इन तीन अवस्थाओं में व्यतीत होता है। ये तीन अवस्थायें ओंकार के अकार-उकार-मकार से दर्शायी हैं।

मनुष्य का जीवन ओंकारमय होना चाहिए।

ओं इत्येतदक्षरमिदं सर्वं।···भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वं ओंकार एव॥ माण्डूक्य—१

"यह सब ओंकार हैं। जो भूतकालमें था, जो वर्तमानकाल में है और जो भविष्यकालमें होगा, वह सब ओंकार ही है।" अर्थात् यह सब विश्व ही ओंकारका रूप है। अकार भूतकाल है, उकार वर्तमानकाल है और मकार भविष्यकाल है। साधक अपने जीवन में ये तीनों अक्षर देखे और अपने जीवन के भूत, वर्तमान और भविष्यकालके जीवन विभागों को अकार, उकार और मकाररूप बनानेका अनुष्ठान करे। यह अनुष्ठान किस रीतिसे करना चाहिए, इस विषय में इसी माण्डूक्य उपनिषद् ने कहा है, वह यहां अब लक्ष्यपूर्वक देखिए।

जागरितस्थानो···अकार···आप्नोति ह वै सर्वान् कामान् आदिश्च भवति॥९॥ स्वप्नस्थान··· उकार···उत्कर्षात् उभयत्वाद्वा, उत्कर्षति ह वै ज्ञानसंतति, नास्याब्रह्मविकुत्ले भवति॥१०॥ सुषुप्तिस्थान··· मकार···मिनोति ह वा एतत्सर्वं अपीतिश्च भवति॥११॥

(माण्डूक्य उप. ९. ११)

जाग्रतावस्था बतानेवाला अकार है। इसमें प्रयत्न करके यह प्रथम स्थानमें होता है और सब कामनाओंको प्राप्त करता है। स्वप्न स्थानकी अवस्था बतानेवाला उकार है। इससे वह उत्कर्ष प्राप्त करता है, ज्ञानकी प्रगति सम्पादन करता है और इतनी उन्नति करता है कि इसके कुलमें ब्रह्म-ज्ञानी ही उत्पन्न होते हैं। सुषुप्ति स्थानकी स्थिति बतानेवाला मकार है। इस स्थितिमें वह सबको मिलता है, सिद्धि तक पहुँचता है।" यह है साधकको

सिद्धि प्राप्त करनेका अनुष्ठान। यह किस रीतिसे किया जाता है, यह अब देखिये।

जाग्रतावस्था में ऐसा यत्न करना योग्य है कि जिन प्रयत्नों से वह "आदि" बने अर्थात् प्रथम स्थान में आ जाए। जो कार्य वह करे, प्रथम स्थान में विराजने योग्य बने। शिक्षक बनना है तो प्रथम स्थान में विराजनेवाला शिक्षक हो। जो भी कार्य वह करे, उसमें वह प्रथम रहे। जो प्रथम रहेगा, उसकी सब शुभ इच्छायें तृप्त होने योग्य उत्तम परिस्थिति उसको प्राप्त होगी।

द्वितीय अक्षर उकार है। यह उत्कर्ष और उन्नति का दर्शक है। ज्ञान प्राप्त करके उत्कर्ष, उदय तथा उन्नति प्राप्त करनी है। ज्ञान इतनी उच्च अवस्था तक प्राप्त करना कि जिससे इसके कुल में कोई अज्ञानी उत्पन्न न हो सके। ज्ञान से अभ्युदय प्राप्त करने की सूचना यहाँ मिलती है।

तृतीय अक्षर मकार है। माननीय अवस्था का दर्शक यह है। जो प्रथम स्थान में विराजता है, जो ज्ञान से उत्कर्ष प्राप्त करता है, वह सब स्थानों में माननीय होगा, इसमें क्या सन्देह है। वह सब नापता है और सिद्धि तक पहुँचता है।

जीवन में ओंकार के तीनों अक्षर लाने का यह अर्थ है (१) प्रथम स्थान में विराजमान होना (२) ज्ञान से अभ्युदय प्राप्त करना और (३) श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करना। संक्षेप से यह है मानवी जीवन का कार्यक्रम जो ओंकार के तीन अक्षरों से सूचित होता है।

यह एक जीवन की सात्त्विक महत्त्वाकांक्षा है। मनुष्य को अपने जीवन में यह प्राप्त करनी चाहिए। इस विषय में बहुत लिखने योग्य है। परन्तु इन तीन बातों में सब कुछ आ गया है। इस लिए अनुष्ठान करने वाले की दृष्टि इस ओर खींचकर हम आगे व्याहृतियों से जो अनुष्ठान सूचित होता है, वह देखेंगे—

व्याहृति

"व्याहृति" का अर्थ "गुप्त संकेत का शब्द" है। जो शब्द विशेष अर्थवान् है विशेष गुप्त परन्तु महत्त्व का आशय बताता है, उसको "व्याहृति" कहते हैं। ये व्याहृतियाँ सात हैं। परन्तु इनमें तीन विशेष ही महत्व की हैं। देखिये—

मुख्य तीन व्याहृतियां

"भूः, भुवः, स्वः," ते तीन व्याहृतियां मुख्य समझी जाती हैं। इनसे जो

बोध मिलता है, वह अब देखिए।

१—भूः (भू सत्तायाम्) अस्तित्व, अपनी, स्थिति, ऊपर उठना, उत्पन्न होना, जीवित रहना, चलाना, सहायता करना, अभ्युदय प्राप्त करना ये मूल अर्थ हैं। अस्तित्वका भाव मुख्य है। पहली मुख्य बात अपने अस्तित्व की है। वह अपना अस्तित्व सुखसे रहना आवश्यक है।

स भूरित्येव ऋग्वेदस्य रसं आदत्त

(जै. उ. १।१।३)

उस प्रजापतिने "भूः" यह ऋग्वेद का साररूप रस ग्रहण किया", अर्थात् ऋग्वेद का सार 'भूः" है अर्थात् अपने अस्तित्व के लिए जिसकी आवश्यकता होती है, वह सब ऋग्वेद से प्राप्त होता है

भूरिति वा अयं लोकः तै. १।१।५

भूरिति वै प्राणः। तै. उप. १।५।३

पुरुषः, तस्य भूरिति शिरः। बृ. उ. ५।५।३

"भू का अर्थ भूमि है। भू का अर्थ प्राण है और मनुष्य का सिर भी भू का अर्थ है।" पृथिवी पर मनुष्य रहता हैं। पृथ्वी से उत्पन्न अन्न खाकर मनुष्य जीवित रहता है। उस मनुष्य का शरीर, सिर और प्राण इसी से टिके रहते हैं। यह सब 'भू' से बोधित होता है। मानव के सुखमय जीवन के लिए जिसकी आवश्यकता है, वह सब भू है।

२—भुवः (भुवोऽव कल्पने) भुवः का अर्थ कल्पना करना, ज्ञान प्राप्त करना, शुद्ध करना विचार करना, मिलाना। भुवः का अर्थ ज्ञान प्राप्त करके अपना जीवन परिशुद्ध बनाना, अपने अभ्युदय का विचार करना और अपने में शुभ भावों को मिलाना।

भूः व्याहृति से अपना अस्तित्व टिकाने का बोध प्राप्त हुआ। वह अस्तित्व पत्थर जैसा नहीं, अपितु ज्ञानयुक्त अस्तित्व चाहिए, यह बात 'भुवः' व्याहृतिने कही है। मनुष्य का अस्तित्व रहे, पर वह ज्ञान से परिशुद्ध होता रहे। इसके कुछ वचन भी यहां देखिये—

"भुव इति यजुर्भ्यः। छां. उ. ४।१७।३

भुव इत्यन्तरिक्षम्।

भुव इति वायुः तै. १।५।१

भुवोऽन्नम्। महाना' उ. ७।२

भुवः 'यह व्याहृति यजुर्वेद-यज्ञवेद से प्राप्त हुई है। कर्मयोग का बोध वह करती है। वायु और अन्न भी भुवका अर्थ है। अन्तरिक्ष में वायु गति करता है, मिलाता है, शुद्धता करता है। यही प्रगति, मिलाना और शुद्ध भुव इस व्याहृति से बोधित होती है। अब "स्वः" का भाव देखिये—

३. "स्वः" (स्वर) - (स्व) अपना (र) गति, तेज, उष्णता, प्रेम, दान और समर्पण। अपना तेज, अपनी प्रगति, सत्कार्य में अपना समर्पण, अपने हृदय में प्रेम रखना इत्यादि अर्थ स्वर के हैं। अपना प्रकाश बढ़ाना, अपने जीवन को तेजस्वी करना, अपने अभ्युदय के लिए यत्नवान् होना, अपना समर्पण करके जनता जनार्दन का हित करना, यह भाव इस व्याहृति में है। इसका अर्थ देखिए। "स्वरिति प्रतिष्ठा। बृ. उ. ५।५।३।४

सुवरिति व्यानः। तै. उ. १।५।३

देवान् सुवर्यतः। श्वे. २।३

सुवरन्नम्। महाना. ७।१

तपसा ऋषय स्वरन्वविन्दन्। महाना. २२।१

सत्येन न सुवर्णाल्लोकाच्च्यवन्ते।। महाना. २२।१

"स्वः" यह सबकी प्रतिष्ठा है। सबका आश्रय है। शरीर में व्यापने वाला प्राण स्व है। स्वः प्राप्त करने से देवों की प्राप्ति होती है। स्वः उत्तम अन्न है। तप से ऋषियों ने स्वः को प्राप्त किया था। जो सत्य का पालन करते हैं वे सुवर्गलोक से गिरते नहीं।

यह स्वः का माहात्म्य है। सबका आश्रय स्वर् है। सब शरीरभर में व्यापक होकर उसको चलानेवाला व्यान-प्राण "स्वर्" है। इस स्वर् को प्राप्त करने से देवों की शक्ति प्राप्त होती है। तप से अर्थात् श्रेष्ठ धर्मकार्य करने में जो कष्ट सहन करने पड़ते हैं, उनको सहन करने से इस स्वर् की प्राप्ति होती है। सत्य का पालन करने से यह स्वर् प्राप्त होता है। स्वः की कल्पना इससे हो सकती है।

भूर्भुवः स्वः

"भूः, भुवः, स्वः" ये तीन व्याहृतियां मुख्य हैं। इनका जो स्पष्टीकरण ऊपर दिया है। उसका मुख्य तात्पर्य यह है कि (१) अपना अस्तित्व टिके, अल्पायु में मृत्यु न आवे (२) ज्ञान प्राप्त हो और अपनी शुद्धता अन्तर्बाह्य रीति से हो तथा (३) अपना आत्मतेज बढ़े।"

यह संक्षेप से इन तीन व्याहृतियों से मिलने वाला बोध है। गायत्री का जप करने वाला इसको अपने मनमें धारण करके जपके समय तथा पश्चात् इस बोध से प्राप्त होने वाला अपना कर्त्तव्य ध्यान में धारण करे। इसको

कभी न भूले। यह मानवी उन्नतिका साधन है।

ओंकारपूर्वक तीन व्याहृतियों का उच्चारण करने के पश्चात् गायत्री मंत्र का जप किया जाता है। कई लोग सातों व्याहृतियों को बोलकर गायत्री-मंत्र बोलते हैं। उनको सातों व्याहृतियों का अर्थ समझना चाहिए। इसलिए पहले शेष चार व्याहृतियों का अर्थ देते हैं।

महः (महर्) की प्राप्ति। जिसको प्रथम तीन व्याहृतियों के उद्देश्य प्राप्ति हो गई हो अर्थात् अपने अस्तित्व, ज्ञान, पवित्रता तथा आत्म-प्रकाश की प्राप्ति हो गई हो, उसे महत्त्व प्राप्त होने में सन्देह ही क्या है? इस महः के अर्थ ये हैं—(१) महत्ता, महोत्सव—आनन्दोत्सव का समय, (२) यज्ञ, समर्पण, अर्पण (३) प्रकाश, तेज, ज्योति, (४) वेदमन्त्र, स्तुति के मंत्र ५) आनन्द, सुख प्रसन्नता; (६) शक्ति, सामर्थ्य, बड़प्पन (७) विपुलता, बहुतायत, (८) जल, जीवन, ये अर्थ इस व्याहृति के हैं। ये सभी अर्थ महत्त्व का प्रकाश करते हैं।

महः के विषय में उपनिषदादि में ऐसा कहा है—

मह इति ब्रह्म। तैं १।५।१

मह इत्युपासीत, महान्भवति तै. ६।१७।३

"महः" यह ब्रह्म का नाम है, क्योंकि ब्रह्म महान् है। "महः" की उपासना जो करता हैं, वह बड़ा होता है। महान् होना चाहिए, यह महः का संदेश है। इसके पश्चात् जन नामक व्याहृति है।

जनः

'जनः' का अर्थ है जनन, प्रजनन करना, उत्पन्न करना, ऊपर आना, उगना जन्म लेना। मानव जाति। राष्ट्र जाति। महः के पश्चात जनः का स्थान है। "जन" से पूर्व "महः" का कथन महत्त्वपूर्ण है। यह कथन इस बात की ओर संकेत करता है कि मनुष्य स्वयं महान् होने के बाद ही सन्तानोत्पादन का कार्य करे। महान् पिता ही महान् पुत्र उत्पन्न कर सकता है। ब्रह्म भी स्वयं महान् होने के बाद ही सृष्टि उत्पन्न करता है।

तपः

शीतोष्णसहिष्णुता ही तप है। मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि द्वन्द्वभाव तो आया ही करते हैं। उन्हें समभाव से सहन

करना ही तप है। अथवा "श्रुतं तपः सत्यं तपः दानं तपो दमस्तपः" इस उपनिषद्वाक्य के अनुसार अध्ययन करना, सत्य बोलना, दान देना और जितेन्द्रियता से जीवन यापन करना तप है।

सत्यम्

सत्य का अर्थ है अविनाशी। यही अमरता है। तपः की सीढ़ी को पार करके मनुष्य अपनी अन्तिम मंजिल पर जा पहुँचता है। सत्य की प्राप्ति ही अन्तिम लक्ष्य है। इस स्थितिपर आकर मनुष्य ब्रह्मरूप बन जाता है। ब्रह्मको जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। सत्यं की स्थिति मोक्ष की स्थिति है।

इस प्रकार इन सात महाव्याहृतियों का वर्णन है। गायत्री मंत्र में इन सभी व्याहृतियों के अर्थ का समावेश है।

गायत्री का अर्थ

हम (सवितुः देवस्य) उस सविता देव के (तत् वरेण्यं भर्गः) उस ग्रहण करने योग्य शुद्ध तेजको (धीमहि) धारण करें या उस तेज का हम ध्यान करें (यः नः धियः प्रचोदयात्) जो देव हमारी बुद्धियों को उत्तम मार्ग में प्रेरित करे।

सविता देव सबका प्रसविता अर्थात् सबको उत्पन्न करने वाला है। "सविता वै देवानां प्रसविता" सविता सभी देवों को भी उत्पन्न करता है। आधिदैविक क्षेत्र में यह सविता परमात्मा है। वही सब सृष्टि का जनक है। वही सूर्य, चन्द्र, वायु, जल आदि देवों को उत्पन्न करता है। आध्यात्मिक क्षेत्रों में यह आत्मा आंख आदि इन्द्रियों को उत्पन्न करती है। इसलिए आंख आदि देवों को उत्पन्न करने के कारण आत्मा भी सविता है। यह सविता देव हमारी बुद्धियों को उत्तम मार्ग में प्रेरित करे।

इस गायत्री मंत्र का नित्यप्रति अर्थ मननपूर्वक जप करने से हर तरह उन्नति होती है। यह माता है, जो मनुष्य का निर्माण करती है। यह गानेवाले की रक्षा करती है। इसी लिए इसे गायत्री कहा गया है।

आइए हँसें !

विजय—मित्र ! इस शीशी में कौन-सा तेल है ?

सुनील—ओहो, इस में तेल नहीं, गोंद है।

विजय—तभी मेरी टोपी नहीं उतर रही है।

क्या हम आर्य हैं ?

—'सज्जन'

उक्त प्रश्न का उत्तर प्रायः "हाँ"। तब हमें क्या करना है ? आओ विचार करें।

'आर्य' का अर्थ 'श्रेष्ठ' मनुष्य से है न कि कोई जाति, धर्म या फिर किसी विशिष्ट संस्कृति से ; वरन् प्राकृतिक संस्कृति। अगर संस्कृति का नाम विशिष्ट है, तब तो वह कायम नहीं रह सकती ; अगर किसी धर्म का नाम है, तो वह भी हमेशा अच्छा नहीं रह सकता ; और यदि जाति-विशेष का नाम है, तो वह भी ग़लत। अगर अमर और शाश्वत है ; तो सत्य, प्रेम, अहिंसा, अपरिग्रह और परोपकार आदि हैं। ईश्वर ने आर्य' को विश्व में भेजते समय यही संदेश दिया था।

'आर्य' शब्द का अर्थ अगर 'श्रेष्ठ व्यक्ति' से लें, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हम कहने को चाहे कुछ भी कहें, लेकिन श्रेष्ठता से दूर हैं। कन्फ्यूशियस ने कहा था कि "चाहे मनुष्य भूख से मर जावे लेकिन अपने श्रेष्ठत्व को न छोड़े।" हम संसार में इसलिए भेजे गये हैं कि मानवमात्र से मिलकर इस विश्व को श्रेष्ठत्व की ओर ले जायें।

आर्य वह है जो श्रेष्ठ है। हम श्रेष्ठ हैं या नहीं, यह हमें देखना है। देश में ही नहीं, विश्व में दावानल धधक रहा है ; परन्तु मनुष्य है कि वह अपने आराम की चिन्ता में लगा है। धर्म, राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति दूषित हो चुकी है। इसे बचाने के लिए किसी को छोटा या बड़ा सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं ; आवश्यकता है तो ऋषि दयानन्द की तरह एक मशाल लेकर इस दुनिया में बढ़ चलने की। जहाँ अंधकार छाया है, वहाँ प्रकाश की आवश्यकता है।

आर्य या श्रेष्ठ हर व्यक्ति बनना चाहता है। इस विचार से कोई अनार्य नहीं। हमारे पूर्वज जिनमें राम, कृष्ण, भरत और युधिष्ठिर जैसे 'आर्यत्व' वाले नीति, योग और सत्य के प्रेमी हो चुके हैं, हम उनका वर्णन करते या फिर मूर्त्ति बना कर पूजा करते हैं और डींग हाँकते हैं ; उनके कार्यानुरूप

बढ़ते नहीं। यह स्वप्न में खज़ाने मिलने जैसा आनन्द है, जो स्वप्न के बाद समाप्त हो जाता है।

तब इसे क्या कहा जा सकता है ? या तो हम उनके शत्रु हैं या फिर खुद उन का नाम लेकर अपने शत्रु तो हैं ही, उन को भी कलुषित करने की चेष्टा कर रहे हैं। अगर हम उनके वास्तविक अधिकारी और आर्य हैं, तो हमें पवित्र वेदों का यह उद्घोष विश्व को देना होगा :—

भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वप्नम् —यजुर्वेद (३०/७)

अर्थ—जागना (ज्ञान प्राप्त करना) महानता देने वाला है और सोना (पड़े रहना) निर्धनता का लक्षण है।

ऋतस्य पथाः प्रेत —यजुर्वेद (७/४५)

अर्थात् सच्चाई के रास्ते पर चलें।

वयं देवानां सुमतौ स्याम

अर्थात् हम विद्वान् पुरुषों के उत्तम आचरण और उपदेशों के अनुसार रहें।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर —अथर्व० (३/२४/५)

अर्थात् सैंकड़ों हाथों से कमाओ और हज़ारों हाथों से दान करो।

संस्कृति के नाम पर द्रविड़ और आर्य का भेद किया जाता है। हम में कुछ राम को और कुछ रावण को आदर देते हैं। क्यों ? हमें यह पढ़ाया गया है कि रावण हमारा है, राम उनका। तात्पर्य यह कि पाश्चात्य लोगों ने भेद भाव डालने के लिए इतिहास का निर्माण कराया। इसलिए हम अपने आप को बाहर से आया कहते हैं और इसी कारण अज्ञानतावश हम अपने मूल उद्देश्य से दूर जा पड़े हैं।

आइये, विचार करें कि हमें कैसा सोचना और बनना है ?

"अपनी मूल प्रकृति में आदमी एक दूसरे से अधिकतर मिलते-जुलते हैं। अपनी संचित आदतों के कारण एक-दूसरे से अत्यधिक दूरी बढ़ा लेते हैं।"

—कन्फ्यूशियस

"जो अपने बड़प्पन के प्रति जागरूक रहते हैं, वे विश्व में महान् व्यक्ति बन जाते हैं और जो अपने छोटे-मोटे कामों में ही उलझे रह जाते हैं, वे साधारण आदमी रह जाते हैं।"

—मेन्शियस

आर्याः श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव युक्ताः मनुष्याः। अर्थात् जो श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव वाले मनुष्य हैं, वे ही आर्य संज्ञा के संज्ञी हैं। —महर्षि दयानन्द।

केवल जन-ज्ञान के सदस्यों के लिए

संध्या-योग

वैदिक अध्यात्म व योग विद्या का अनुपम ग्रन्थ स्व० ब्र० योगीराज
श्री जगन्नाथ जी पथिक लिखित

२०) के स्थान में १०) में

आदेश में ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें : धन अग्रिम भेजें। डाक व्यय २)

जन-ज्ञान प्रकाशन
१५६७. हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५

Jan Gyan Prakashan Series—65

AUM

THE GREAT GAYATRI

JAN GYAN PRAKASHAN
NEW DELHI-5 (INDIA)

JAN GYAN PRAKASHAN
1597, Hardhyan Singh Road, New Delhi-5 (India)

By
Shri Pandit Nardeo Vedalankar

Price : **20 Paise**

June, 1971

Printed at
The Raisina Printery, 4 Chamelian Road, Delhi-6

The Gayatri Mantra

AN EXPOSITION OF THE GAYATRI MANTRA

Below we give the Gayatri Mantra and the meaning of the words that make up the mantra. A detailed explanation of each word has been given in the pages that follow. During the course of our prayer it is important that we know what the mantra conveys. To repeat the mantra in a parrot-like fashion will serve no useful purpose.

THE GAYATRI MANTRA AND ITS MEANING

OM BHUR BHUVAH SWAH. TAT SAVITUR VARENYAM. BHARGO DEVASYA DHIMAHI. DHIYO YO NAH PRACHODAYAT.

OM: God is called OM because He protects.

BHUR: Who is the basis of the life of the whole universe and Who is self-existent.

BHUVAH: Who is free from all pains and whose contact frees the soul from all troubles.

SWAH: Who pervades the multiformed universe and sustains all.

SAVITUR: He is the creator and energiser of the whole universe.

DEVASYA: The giver of all happiness and whose communion is sought by all.

VARENYAM: Worthy of acceptance the most Excellent.

BHARGO: Pure and Purifier.

TAT: That very God.

DHIMAHI: Let us embrace, so that.

YO: That God.

PRACHODAYAT: May direct.

NAH: Our.

DHIYO: Mental faculties.

Aum

AUM is the supreme name of God. The word AUM has the power of expressing various ideas and qualities. The word AUM is made up of three letters, namely: A, U, and M. These letters express the three great qualities of God.

'A' denotes the power of God to create the universe.

'U' denotes the power of God to preserve the universe.

'M' denotes the power of God to dissolve this universe. On this basis God is known to us by three other names. 'A': Brahma (Creator), 'U': Vishnu (Preserver) and 'M': (Destroyer).

When we pronounce the word AUM, the vocal organs express these qualities of God.

To say A (ah) we have to open our mouths. Thus, 'A' is also the first letter of the alphabet of all languages. Thus 'A' signifies the beginning of or the creation of the universe.

When saying 'U' (oo) the mouth is still kept open and the lips are curved. This signifies the quality of maintaining, preserving and sustaining.

When 'M' is pronounced the lips have to be closed. This signifies the quality of bringing something to an end. Thus we know that God is the creator, preserver and destroyer of this universe. This natural Law of God has been in practice for an indefinite period of time and will continue to be so for an indefinite period of time.

The word 'AUM' also has two special meanings. It means OMNIPRESENT and PROTECTOR. God is present in every particle of the atom and there is not a place imaginable where His presence is not to be felt. Being omnipresent He is protecting this universe through His power, Knowledge and His laws. God is also the protector of His devotees.

PURPORT OF AUM: Oh All-pervading, Creator, Preserver and Destroyer. Thou art my Protector. Under Thy care and guidance may I be righteous.

Bhur

The first three words of the Gayatri Mantra, namely, **bhur, bhuvah, swah** are called **MAHAVYAHRITI.** These three words express the nature of God. They express His oneness.

The word **Bhur** indicates the existence of God. God is eternal. He was present at the time of creation, is present during preservation and will be present at the dissolution of the universe. God was present even before the creation of this universe and will be present even after the dissolution of the universe. God does not undergo a change at any time, neither is He subjected to failings and sufferings as we are. His changeless state remains constant at all times.

BHUR is indicative of life (Prana). God is the life-giver and He sustains our life. God is the source of all life. He establishes life into our bodies. We live because He has given us life and we shall die when He will take away our life. Our life is maintained or governed according to the laws of God. May we through His life-power protect the lives of others. Never should we be guilty of taking the life of another being. That is the work of God, our life-giver. The life-giver God is called BHUR.

The word BHUR also means the earth. On this earth we are born and sustained. God has provided us with life-giving air and nourishing substances for the maintenance of our life. Being the Creator and Protector of this universe, God is also BHUR.

PURPORT OF BHUR : O Changeless God, our Life-giver and Preserver, grant me Thy life-giving force so that I may live through Thy Grace.

Bhuvah

BHUVAH is indicative of God's absolute consciousness. God is a Self-Existent Conscious Being. He is conscious of Himself and also of others. His consciousness vibrates within the particle of even the minutest atom. Being absolute conscious He is capable of controlling and governing this universe. His consciousness helps to regulate the governing laws of the universe. That absolute conscious Being is BHUVAH.

The word BHUVAH also means remover of pains and sufferings (Apana). We see pain, suffering, distress and calamities around us. Disease, old age, misery and death cause mental grief to mankind. Earthquakes, forest fires and floods are natural disasters which bring untold misery to many. Even man through sheer ignorance violates the Laws of Nature and thus faces serious consequences. Similarly, lust, anger, and pride are vices which have done incalculable harm to man. Under these circumstances devoted supplication to God will help to remove our pains and sorrows.

Pain and suffering are merely expressions of our mind. The degree and intensity of pain is felt by our mind. That is why we are often mentally aggrieved. Our imagination sometimes tends to multiply the intensity of our pains and sorrows. If someone else has made some progress in life we become envious. We pity ourselves or our kith and kin, if fortune and worldly possessions have not been kind to us. Thinking of the unknown future that lies ahead, we foolishly brood and suffer mental agony. If we only begin to view these things in a different light, our sorrows will no longer oppear to us as sorrow. Change of outlook towards these things in life can only come about through intense devotion to God. The remover of our pains and sorrows is that God Who is BHUVAH.

BHUVAH is indicative of God's relationship with the celestial world. The great expanse of the sky, boundless and void, denotes the greatness of God. Even greater than the sky is BHUVAH, or God.

PURPORT OF BHUVAH : O Abode of Happiness, I perceive Thee. Treat Thou me with compassion. Being under Thy benign care I am free from pains and sorrows .

Swah

Swah is symbolic of God's bliss. Except God, everyone else experiences pain, trouble, calamity and obstacles in life. Heavenly bliss is only enjoyed by God. Human beings and other creatures also lead a life of happiness. But their happiness is momentary and not everlasting. Man jubilates over his successes in life and feels happy. He bubbles with happiness. Man also boasts of his wealth, strength and his knowledge. Man seeks pleasure in life through his sensory organs and gets absorbed in them. Yet, are those pleasurable experiences of a permanent nature? Can it be said that pain and suffering have left no traces behind? In reality, happiness is foreshadowed by unhappiness just as day is followed by night and light by darkness.

But God's bliss is of a different nature. His exultation is not affected by misery and unhappiness. This is so because there is no imperfection in Him and He is not subjected to deficiency. He is not lacking in knowledge. God is All-happiness. One who has realised the divinity of God becomes happy. To be able to establish oneness with God is to experience true happiness. That Blissful God is SWAH.

SWAH also denotes that God is All-pervading (Vyana). He pervades the universe and thus keeps the world under His supervision. That controller and director of this universe is SWAH.

God has also created the sun, the stars and many other planets. They are all performing their functions through the power of God. The controller of these heavenly bodies is SWAH.

These three words are indicative of :

BHUR	PRANA	THE EARTH	TRUE EXISTENCE
BHUVAH	APANA	THE SKY	CONSCIOUSNESS
SWAH	VYANA	HEAVEN	BLISS

PURPORT OF SWAH.: O Giver of happiness, All-Blissful, May I enjoy the nectar of bliss in Thy Abode.

Tat Savitur

TAT : Tat means **that**. In the Sanskrit language it is used in the third person. Tat is that which has been spoken of; That Who is well-known. Tat represents the power of thought. Tat is That Whom we have thought of and Whom we know. That God Who is famous: Whom I know and Whom I remember is TAT.

SAVITUR : In the Gayatri Mantra this word has been used for God. For the same reason this mantra is also called Savitri Mantra. Savita speaks of God's power to create this universe. Being All-pervading, the power of God to create this world and to bestow refinement to His creations is called SAVITA.

The material cause of this universe is Nature. When nature was in a state of inertia and dissolution, then it was God's power that brought about that state of mobility. The creative power of God is called Savita. This power is responsible for the creation, preservation and dissolution of this universe.

This power acts as an impetus in man to do something. Man cannot remain idle and inactive in this world. Man is gifted with this power of creation. This has enabled him to invent many things. This Savita power has led him to create things of artistic value. On the one hand man has created poems, literature, paintings, and skyscrapers, while on the other hand his creative power has enabled him to manufacture objects over which he has full control. All scientific achievements in this world are a result of this prompting power, SAVITA. The power of procreation in the creatures is chiefly due to this power. Therefore Savita also means Father. This power of God, Savita, enables man to determine the right from wrong, the good from bad and vice from virtue.

PURPORT OF TAT SAVITUR : O, the Creator of the Universe, Thou art my Father. I gain inspiration from Thee to act wisely and to follow the righteous path.

Varenyam

Varenyam means Who is worthy of acceptance and Who is the Most Excellent. Rishi Dayanand writes : "YAD VARAM VARTUM ARHAM ATISHRESHTHAM TAT VARENYAM" which means that He Who is worthy of Acceptance and transcendent is Varenyam.

What are the objects worthy of acceptance in this world? Being a prisoner of delusion we hope to possess all the worldly riches. More often than not we are impatient to get them. Objects that gratify our senses appeal to our mind. But these worldly objects that satisfy our minds are perishable. Their effect is temporary. Having obtained these in a large measure we are disappointed in the end. Someone whom we should cherish to accept worthily is God. Having obtained Him we can hope to secure everlasting happiness. He is the Most Excellent Whom nothing can surpass. That God is VAREṄYAM.

Whom we once accept to Him we always belong. We live for Him and we die for Him. We and God then become inseparable. Once we have accepted Him, we dedicate our entire self to Him. Our life journey is directed by Him. Once we are happy in the thought that He has been entrusted with our cares, all fears and doubts in life disappear. That benevolent Being leads us to our ultimate destination and we look hopefully towards Him.

Varenyam also means One Who is eligible. We have elected Him to be our Leader. Our intellect and our power merges in God. Our happiness and our sorrows are in His hands. As a sincere devotee we accept His will. In whatever condition God keeps us we will be contented. We dedicate all our actions and thoughts to God because our God is VARENYAM.

PURPORT OF VARENYAM : O Pure and Defectless God, Thou art worthy of Reverence. I have dedicated myself to Thee. For me Thou art worthy of Acceptance.

Bhargo

BHARGO means Glorious Light. The power with which God destroys sins and afflictions is called BHARGO.

BHARGO is God's pure, faultless and sin-destroying glory. God is the Light of all lights. Thousands of suns appearing at the same time cannot match His Light. This is so because He is absolutely pure. He is without a blemish and He is faultless. He is All-Knowledgeable.

When gold is melted in the fire, its impurities are destroyed, and, then gold is extracted in its purest form. Sincere prayer brings that Light of God within us. Our soul has that Light but it is without lustre. It has been made impure with ignorance and enveloped our soul. We want that Light to shine in all its glory. We want it to be purified. We want the light of our soul to merge with the matchless Light of God. Close association with Him alone can bring us close to that Light.

We are moving in a world of darkness. Vices have taken control of our senses. Therefore the correct path is not visible to us. We have drifted away from the true Light. The splendour of our soul has been defiled. We are lost and we do not know where we are. We stumble. Our soul needs to be illumined. The dirt that has been covering it needs to be removed. That illumination, that purity, and that sanctification of the soul can only come about when we establish that BHARGO, the Glorious Light, in our hearts. His Light will bring back the lustre of our soul. The impurities and the veil of darkness will be destroyed for ever.

A devotee having received the Light will lead a pure life. He will vow that all his actions, words and thoughts will be free from sin.

PURPORT OF BHARGO : O Faultless, Untainted God, I have kindled that Light of Thine within my heart. That Light is removing my ignorance and destroying my sins. I am being purified.

Devasya

The word DEVA has many meanings. In all our Indian languages the word Deva has been widely used. In the words of the layman, it is the simple but chief name of God. Anyone who possesses extraordinary quality or personality, we address him as deva. But the only Deva of ours is God. In the Shwetashwatar Upanishad (6 : 11) it is said "EKO DEVAH SARVA BHUTESHU GUDHAH SARVA VYAPI SARVA BHUTANTARATMA" which means that the God Who is to be found everywhere and within everything is the only DEVA. We remember the same Deva or Paramatma in the Gayatri Mantra.

The word DEVA could be attributed to one who is charitable; one who gives light; one who gives radiance to others; one who has the power of movement; one who is praised; and one who is happy. All these qualities are found in God and, therefore, He is called DEVA. We have created many **devas** or **devis** because of the varied qualities and powers of God. These qualities and powers of God do not speak of His different entities or forms of existence. They merely denote His qualities. Based on these qualities other objects have been called devas also. But they do not possess the divine power and absolute consciousness of God. The sun and the moon give light, therefore, they are called devas. But they depend for their light on the Light of God. Wind has the power of movement, and it is called a deva. A person who is charitable is also a deva. Mother, father, guru and a learned person are all called deva. But the Mahadeva of all these devas is the One and Only Paramatma.

The deva of the Gayatri Mantra is the Self-illumined, Blissful, All-Knowledgeable and the All-Pervading God. That deva is the SAVITAA, *i.e.* the Creator, the Varenyam, the Most Excellent, and the Bhargo, the Light of all lights. We always remember that Deva. He can endow us with divine power and He is our Guide.

PURPORT OF DEVASYA: O Deva of all devas, Thou art the Giver of Light. My soul receives the Spiritual Light from Thee. I am experiencing Thy Divinity.

Dhimahi

DHIMAHI means to meditate, and to contemplate upon the glorious form of God.

When we sit and pray, we think of God. In order to fix our attention on God, it is necessary that we remove all other thoughts from our mind and be at peace. Peace of mind enables us to experience the power of God. Our mind is very fickle and it wavers. We have been praying for a long time yet our mind goes astray. Other thoughts come rushing into our mind. It is our duty to control the wavering mind. That mind must only have the thoughts of God within. If we have chosen Him as being Worthy of Acceptance and if we have understood His creative power, then it should not be difficult for us to concentrate on Him.

It is the nature of man to be attracted towards something that pleases him. A student is keen on his studies, while an artist is thinking only of his painting. A player on the field has his mind fixed on the game itself. This self-centredness is the key to divine contemplation. If we have truly understood the meaning of the Gayatri Mantra and have realised the greatness of God then it will be possible for us to meditate steadfastly.

When in contemplation we must forget our surroundings. Our cares and worries must vanish. Greed and fear must disappear. If we are in the sublime company of God then these worldly thoughts have no place in the world of meditation. Why should the dreadful happenings in the world become the subject of our thought when we have dedicated our entire self to God? Where the air is still, there the clay lamp burns majestically. In the same way calmness of mind and ease will help to establish our thoughts in God.

PURPORT OF DHIMAHI: O God, Thy Spiritual Light is within me. Thou art in my vision. My resolute mind is centred in Thee.

Dhiyo

DHI means intellect.

We have realized the divine power of God. We have seated Him in our hearts. Now what is there to pray for? What shall we ask Him? What kind of help do we want from Him? Should we ask Him for wealth? Should we ask Him for kingdom and sovereignty? Should we ask Him to remove our pains and sorrows? But having realized Him, these worldly objects have lost their significance.

Then, what ought to be desired that we should pray for? In the Gayatri Mantra we ask God for the highest intellect. Human beings are superior to the other creatures by virtue of the fact that they possess intelligence. Your intellect will enable you to rise towards prosperity. Therefore, we must ask God for good intellect. To possess the worldly riches will be an easy matter to attain if we have the intellect.

Another reason which urges us to ask for intellect is that we must possess the power of discrimination. We must be able to distinguish the right from wrong, truth from falsehood, and good from bad. Good intellect alone is sufficient for us to chart our destiny. Lack of it creates problems. Man becomes ignorant and he lingers in doubts. He does not see the true light. Intellect helps to dispel his ignorance and his doubts. In the Upanishads the intellect has been called the charioteer of the soul. Intellect has enabled men to reach great heights. Without it he is like a boat without a rudder. When the ship of our life is being battered by the stormy waves of the ocean of life then intellect is its principal pilot. Prayer for such intellect is the essence of the Gayatri Mantra.

PURPORT OF DHIYO: O Knowledgeable God. Thy Heavenly Grace is developing my powers of intellect. With my intellect I am gaining true knowledge.

Yo Nah Prachodayat

YO means That God. To whom do we pray for good intellect? To That God Whom we have adored as being worthy of acceptance, and Who is free of all defects.

NAH means ours. In the Gayatri Mantra, for whose intellect do we pray? Not only for our own intellect but for that of every one of us. We do not live only for ourselves but we belong to each other. We ought never to be satisfied only with our progress. Therefore, NAH here includes all our fellowmen, and we pray for all.

PRACHODAYAT means that we ask God to direct our energies in the right direction. When we ask God for good intellect, we also ask Him that our intellect should guide us to follow the correct path. We must move in the right direction and we must never deflect from the path of truth.

Intellect is merely an instrument or a means. Man can either put it to good use or he may abuse it. He can also be a wicked person. He can make others suffer and be arrogant. It is for that reason that we ask God to direct our intellect in the right direction. If we have sincere faith in God then we would not go against His will. We would not be vain. With good intellect we should also possess faith in God. Without intellect a man may develop blind faith. And this will lead to conceit and egoism. Man is ignorant and his knowledge is limited. His intellect can deceive him. God is All-knowledgeable and He alone can guide our intellect. He alone can inspire us to greater and nobler ideals. If our intellect is pure then we would entertain nobler thoughts. We would be truthful and we would always endeavour to perform virtuous acts. It will guide our mind, thoughts, and actions along the path of good conduct. Hence, the aim of our prayer is to ask God to grant us a pure mind and sound intellect.

PURPORT OF PRACHODAYAT: O Omniscient God, I seek Thy Guidance so that I may be able to direct my mind, intellect, and thought towards noble deeds, and it is my desire that I should always have Thee in my thoughts.

The Names of the Gayatri Mantra

The Gayatri Mantra is known by the following three different names:

(1) GAYATRI MANTRA

(2) GURU MANTRA

(3) SAVITRI MANTRA

GAYATRI MANTRA: This is its most important name. The word Gayatri has been given two different interpretations. Firstly, the Gayatri is a prosody consisting of three stanzas, namely:

TAT SAVITUR VARENYAM: Glorification of God.

BHARGO DEVASYA DHIMAHI: Communion with God.

DHIYO YO NAH PRACHODAYAT: Entreaty to God.

Secondly, Gayatri also protects its devotee. One who recites the mantra with devotion and leads a religious life is assured of divine protection when calamities befall.

GURU MANTRA: Before the guru (teacher) gives to his pupil the knowledge of the Vedas, he first makes him understand the religious significance of the Gayatri Mantra. During the Middle Ages the knowledge of the Gayatri Mantra was not revealed to the masses. Rishi Dayanand was the first religious leader to advocate that this mantra is for the benefit of all and not the treasured property of a chosen few.

SAVITRI MANTRA: In this mantra God has been glorified by the use of the word **savita**. God is called **Savita** because He is the Creator and the Life-spring of the universe. Hence, this mantra is also called Savitri Mantra.

MANTRA: The Gayatri is a mantra. The hymns of the Vedas are called mantras. The mantra is a means through which true knowledge of all substances and truth (satya-vidya) is obtained. The mantra is so called because it offers hope and security to a devotee who puts into practice the injunction (advice) of the mantra. The Vedic mantras are the source of all true knowledge and substances known to man. This wisdom of the Vedas is for the preservation and salvation of mankind. Hence, the verses and the hymns of the Vedas are called **mantras**.

The Glory of The Gayatri Mantra

There are many mantras, couplets, psalms, hymns and devotional songs to be found in various religious scriptures that sing the praise of God. Among all these the Gayatri Mantra occupies a place of paramount importance.

Among the many creatures of the universe, man has been endowed with the highest intellect. It is with this supreme gift that man has gained supremacy over the lower beings and has succeeded in bringing under control the forces of nature. But it is essential that this intellect should be pure and untainted. In the Gayatri Mantra we pray for such an intellect. The Gayatri Mantra is not a means to attain wealth, strength, power and supremacy, and it is also not a weapon with which we hope to destroy our enemies or keep our sorrows away.

From the ancient times the Gayatri Mantra has been recited in our prayers. Bhisma Pitamaha advised Yudhisthira, in the Mahabharata, that the Gayatri Mantra can be recited at any time and at any place whether we are resting, walking or working. Peace of mind can be attained by anyone who chants this mantra with utmost reverence. A true devotee suffers no anguish. Rama, Sita, Janak and learned sages at all times sang the Gayatri.

The great saint of this century, Swami Vivekanand asserts that the Gayatri Mantra is a means to attain pure and refined intellect. We should always ask God to bestow us with such an intellect. Wisdom thus attained exhorts us to tread the path of righteousness and to perform noble deeds. In this way we are assured of true happiness and godly bliss.

Having known the glory of the Gayatri, we should recite the Gayatri Mantra with understanding, and not merely parrot-wise.

सुरीनाम के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री शिवरत्न जी पारामारीबो ने रक्षा बन्धन
वित्र दिन श्रीमती राकेश रानी द्वारा भेजी गई राखी अपनी
दयाल द्वारा बंधवायी ! राखी के इस सम्मान और स्नेह के लिए ध

R.N. १०८९६६/६८ जन-ज्ञान, (मासिक) Regd. No. D. 1631
१५९७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५
तम्बर १९७१

महाराणा प्रताप